ISSN 3108-107X

आंबेडकरवादी साहित्य

Peer-Reviewed Research Journal

आंबेडकर-दर्शन पर आधारित वैचारिक, आलोचनात्मक एवं शोधपरक त्रैमासिक हिंदी पत्रिका



वर्ष 6, अंक 2, अप्रैल – जून 2026

RNI पंजीकरण क्रमांक : UPHIN/2021/89341 मूल्य : ₹60/-

'आंबेडकरवादी साहित्य' बाबा साहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर की मानवतावादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार हेतु समर्पित है। डॉ. आंबेडकर की विचारधारा का स्वरुप अत्यंत व्यापक है, जिसमें तथागत बुद्ध, संत कबीर, संत रविदास, ज्योतिराव फुले, नारायण गुरु, संत गाडगे और पेरियार रामास्वामी आदि महापुरुषों के दर्शन का समावेश है। अतः उक्त बात को ध्यान में रखते हुए आंबेडकरवादी साहित्य का घोषणा-पत्र तैयार किया गया है, जो अग्रलिखित है।

आंबेडकरवादी साहित्य का घोषणा-पत्र

आंबेडकरवादी साहित्य के घोषणा-पत्र में आंबेडकरवादी साहित्य (पत्रिका) का उद्देश्य निहित है।

'आंबेडकरवादी साहित्य' से संबंधित स्मरणीय बिंदु निम्नलिखित हैं-

1. आंबेडकरवादी साहित्य 'आंबेडकरवाद' का पोषक है। आंबेडकरवाद का अर्थ है- आंबेडकर का कथन यानी आंबेडकर - दर्शन। आंबेडकर-दर्शन डॉ. आंबेडकर की विचारधारा का समग्र रुप है, जिसमें बुद्ध वाणी, रविदास वाणी आदि का भी समावेश है।
2. अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, दुखवाद, प्रतीत्य-समुत्पाद, समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय, प्रज्ञा, करुणा, शील, मैत्री आदि सभी सिद्धांत एवं मानवीय मूल्य आंबेडकर-दर्शन के अंग हैं। अतः इन सभी का आंबेडकरवादी साहित्य से घनिष्ठ संबंध है।
3. आंबेडकरवादी साहित्य सामाजिक, शैक्षिक, राष्ट्रीय एवं वैज्ञानिक चेतना का प्रेरक है।
4. आंबेडकरवादी साहित्य समाज और संस्कृति से संबंधित तथ्यपूर्ण एवं प्रामाणिक बातों तथा घटनाओं के वर्णन हेतु प्रतिबद्ध है।
5. आंबेडकरवादी साहित्य तथागत बुद्ध की प्रेरक वाणी 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकंपाय' पर आधारित है। 'मूलनिवासी' अथवा 'पंद्रह-पचासी' की अवधारणा से इसका कोई संबंध नहीं है।
6. आंबेडकरवादी साहित्य में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के सम्यक साहित्य को सम्मिलित किया जा सकता है, चाहे उसका रचनाकार किसी भी वर्ग, किसी भी जाति, किसी भी धर्म का हो।
7. आंबेडकरवादी साहित्य भारतीय संविधान में वर्णित सम्यक प्रावधानों के अनुरुप रचा जाने वाला साहित्य है।
8. आंबेडकरवादी साहित्य किसी धर्म अथवा दर्शन की निंदा नहीं करता है, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उनका सम्यक विवेचन करता है।
9. आंबेडकरवादी साहित्य में तथागत बुद्ध, संत कबीर, संत रविदास, ज्योतिराव फुले, नारायण गुरु, संत गाडगे, पेरियार रामास्वामी और डॉ. आंबेडकर आदि सत्यशोधक महापुरुषों की सम्यक वाणी का अंतर्भाव है।
10. आंबेडकरवादी साहित्य आंबेडकरवादी चेतना के साहित्यकारों, शिक्षकों, समाजसेवकों एवं संस्कृति के संरक्षकों का प्रशस्ति-पत्र है।

आंबेडकरवादी साहित्य

Peer-Reviewed Research Journal

आंबेडकर-दर्शन पर आधारित वैचारिक, आलोचनात्मक एवं शोधपरक त्रैमासिक हिंदी पत्रिका

संपादकीय मंडल एवं प्रकाशकीय विवरण

संपादक :

देवचंद्र भारती 'प्रखर'
मो.- 9454199538
editor@ambedkarvadisahitya.com

संपादकीय मंडल :

डॉ. दत्तात्रय मुरुमकर
प्राध्यापक हिन्दी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय
कलिना, सांताक्रूज (पूर्व), मुंबई-400098
dmurumkar.hindi@mu.ac.in

डॉ. प्रमोद रंजन
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, असम विश्वविद्यालय
दिफू कैंपस, दिफू, असम 782462
pramod.ranjan@aus.ac.in

डॉ. गाजुला राजू
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश 211002
raju.g@allduniv.ac.in

डॉ. जनार्दन
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश 211002
janardan@allduniv.ac.in

डॉ. विजय कुमार रबिदास
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश 211002
bkrabidas@allduniv.ac.in

- आरंभ वर्ष : अक्टूबर-दिसम्बर 2021
- आवृत्ति : त्रैमासिक ❖ भाषा : हिन्दी
- विषय : साहित्य, समाज एवं संस्कृति

वर्ष 6 | अंक 2 | अप्रैल - जून 2026

RNI पंजीकरण क्रमांक : UPHIN/2021/89341
ISSN 3108-107X

पत्रिका का उद्देश्य -

'आंबेडकरवादी साहित्य' पत्रिका का उद्देश्य आंबेडकर-दर्शन के आलोक में साहित्य, समाज और समकालीन जीवन के प्रश्नों का वैचारिक एवं आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है। पत्रिका तर्क, प्रमाण, सामाजिक यथार्थ और वैज्ञानिक चेतना पर आधारित गंभीर लेखन को प्राथमिकता देती है तथा समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय के मूल्यों से जुड़े साहित्यिक एवं बौद्धिक विमर्श को आगे बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध है।

संपादकीय कार्यालय :

19/100, भीम नगर कालोनी सनबीम वरुणा के पास, कचहरी, वाराणसी (उ.प्र.) 221002
Email: ambedkarvadisahitya@gmail.com
Website: www.ambedkarvadisahitya.com

स्वामी, प्रकाशक एवं संपादक देवचंद्र भारती, मुद्रक गौतम प्रिंटर्स, सी.27/111-बी, जगतगंज, वाराणसी, (उ.प्र.)-221002 से मुद्रित एवं शी 19/100, भीम नगर कालोनी सनबीम वरुणा के पास, कचहरी, वाराणसी (उ.प्र.) 221002 से प्रकाशित।

संपादक- देवचंद्र भारती

आंबेडकरवादी साहित्य

Peer-Reviewed Research Journal

आंबेडकर-दर्शन पर आधारित वैचारिक, आलोचनात्मक एवं शोधपरक त्रैमासिक हिंदी पत्रिका

विषय सूची -

संपादकीय :

1. दलित, पददलित और महादलित की अवधारणा बनाम ''हम दलित नहीं'' 3

आंबेडकरवादी विमर्श :

2. आंबेडकरवादी साहित्य : मूल्यांकन की कसौटियाँ और आलोचना-दृष्टि - देवचंद्र भारती 'प्रखर' 5

शोध-पत्र :

3. तुलसीराम की आत्मकथाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक यथार्थ - डॉ. दुर्गेश कुमार राय 8
4. भभूल्या : विमुक्त समुदाय का जीवन-संघर्ष - डॉ. बी.एल. आर्य 15
5. 'वामन फिर आ रहा है' : मिथकीय प्रतीकों का आंबेडकरवादी पुनर्पाठ - देवचंद्र भारती 'प्रखर' 18
6. सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा शिकंजे का दर्द में स्त्री-अनुभव और सामाजिक चेतना- नीरू देवी 21
7. बी.आर. बुद्धप्रिय के निबंधों में समकालीन आंबेडकरवादी चिंतन- सीमा वाल्मीकि 23

आंबेडकर वांग्मय :

8. मुक्ति कौन पथे? (बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वाड्मय, खंड 38 से) 27

सामाजिक प्रतिवेदन :

9. डॉ. आंबेडकर के 135वें जयंती महोत्सव में सामाजिक न्याय, धम्म और आंबेडकरवादी चेतना पर हुआ विमर्श - मनोहर लाल 'प्रेमी' 35
10. वैशाखी पूर्णिमा की पूर्व संध्या पर गूँजा बुद्ध और आंबेडकर का संदेश - मनोहर लाल 'प्रेमी' 38
11. धम्म-चर्चा में डॉ. आंबेडकर के राजनीतिक मिशन पर हुई सार्थक चर्चा - सनम जी, जिला संवाददाता 39

रचनात्मक साहित्य:

12. आंबेडकर का मिशन (निबंध)- डॉ. बी.आर. बुद्धप्रिय 40
13. विमर्श का तमाशा (निबंध) - देवचंद्र भारती 'प्रखर' 44
14. पांचवी फेल (कहानी) - श्यामलाल राही 46
15. राजेश घनघाव : सामान्य व्यक्तित्व का असामान्य कर्तृत्व - एक सच्चे आंबेडकरवादी की यशोगाथा! (संस्मरण) - प्रा. जगदीश घनघाव 49

समकालीन हस्तक्षेप :

16. पहचान, आत्मगौरव और सामाजिक एकता के प्रश्न - लालजी निर्मल 62

पुस्तक समीक्षा :

17. स्वाभिमान की वैचारिक उद्घोषणा : हम दलित नहीं- डॉ. बी. आर. बुद्धप्रिय 64
18. आंबेडकर के मिशन की समकालीन व्याख्या है पुस्तक ''आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत''- प्रा. दामोदर मोरे 66

दलित, पददलित और महादलित की अवधारणा बनाम ''हम दलित नहीं''

भारतीय समाज में वंचित समुदायों की पहचान को लेकर अनेक शब्द प्रचलित हुए हैं। इनमें ''पददलित'', ''दलित'' और ''महादलित'' प्रमुख हैं। इन शब्दों को सामान्यत: सामाजिक न्याय, प्रतिरोध और मुक्ति की राजनीति से जोड़कर देखा जाता है। किंतु किसी भी अवधारणा का मूल्यांकन केवल उसके ऐतिहासिक उपयोग से नहीं, बल्कि उसके वैचारिक परिणामों से किया जाना चाहिए। यही वह बिंदु है, जहाँ ''हम दलित नहीं'' का कथन एक गंभीर बौद्धिक प्रश्न के रूप में सामने आता है। यह केवल शब्द बदलने की मांग नहीं है, बल्कि पहचान की उस पूरी पद्धति की समीक्षा है, जो किसी समुदाय को उसके दमन के आधार पर परिभाषित करती है। ''पददलित'' और ''दलित'' दोनों शब्द मूलत: उत्पीड़न की स्थिति को व्यक्त करते हैं। इनका अर्थ उस व्यक्ति या समुदाय से है, जिसे सामाजिक व्यवस्था ने दबाया, कुचला या अधिकारों से वंचित किया। इतिहास के अध्ययन में ऐसे शब्दों का महत्व हो सकता है, क्योंकि वे सामाजिक अन्याय की वास्तविकताओं की ओर संकेत करते हैं। किंतु समस्या तब उत्पन्न होती है, जब इतिहास की व्याख्या के लिए प्रयुक्त शब्द को ही स्थायी आत्मपहचान का आधार बना दिया जाता है। कोई भी समुदाय अपने संघर्षों को स्मरण रख सकता है, लेकिन अपनी संपूर्ण पहचान को संघर्ष और अपमान की भाषा में स्थायी नहीं कर सकता।

यह प्रश्न केवल भाषाई नहीं, बल्कि दार्शनिक है। क्या मनुष्य की पहचान उसके ऊपर हुए अत्याचार से निर्धारित होगी या उसकी चेतना, उसके अधिकारों और उसके भविष्य से? यदि कोई व्यक्ति स्वयं को बार–बार उसी शब्द से परिभाषित करता है, जिसका अर्थ दबा हुआ, कुचला हुआ या उत्पीड़ित है, तो वह अनजाने में अपने ऊपर थोपी गई ऐतिहासिक स्थिति को ही अपनी मूल पहचान का आधार बना रहा है। मुक्ति का दर्शन व्यक्ति को उसकी पराधीन अवस्था से निकालकर स्वतंत्र और सम्मानजनक स्थिति में स्थापित करता है; वह उसे स्थायी रूप से उसी पराधीनता की भाषा में नहीं बाँधता। यहीं से ''दलित'' अवधारणा की वैचारिक सीमा दिखाई देने लगती है। यह शब्द सामाजिक अन्याय की ओर संकेत करने में उपयोगी हो सकता है, किंतु जब इसे स्थायी सामाजिक परिचय के रूप में स्थापित किया जाता है, तब यह व्यक्ति को उसके वर्तमान और भविष्य के बजाय उसके अतीत से बाँध देता है। सामाजिक परिवर्तन का उद्देश्य उत्पीड़न की संरचनाओं का अंत करना है, न कि उत्पीड़न से निर्मित पहचान को स्थायी बनाना। यदि किसी आंदोलन का अंतिम परिणाम यह हो कि समुदाय स्वयं को सदैव उसी नाम से पुकारता रहे, जो उसके दमन की स्मृति से निर्मित हुआ था, तो यह स्थिति गंभीर पुनर्विचार की मांग करती है।

इस संदर्भ में 'महादलित' की अवधारणा और भी अधिक समस्याग्रस्त दिखाई देती है। यह शब्द सामाजिक न्याय की अवधारणा को स्पष्ट करने के बजाय वंचित–वर्ग के भीतर कृत्रिम विभाजन पैदा करता है। यह सामाजिक परिवर्तन का नहीं, बल्कि सामाजिक विखंडन का शब्द है। यदि 'दलित' की व्यापक श्रेणी पर्याप्त होती, तो उसके भीतर एक नई श्रेणी निर्मित करने की आवश्यकता ही क्यों पड़ती? 'महादलित' का निर्माण यह संकेत देता है कि पहचान की राजनीति लगातार नई उपश्रेणियाँ पैदा करती है और अंतत: एकता के स्थान पर विभाजन को जन्म देती है। इससे वास्तविक प्रश्न – शिक्षा, आर्थिक

अवसर, सामाजिक सम्मान, प्रतिनिधित्व और संवैधानिक अधिकार – पृष्ठभूमि में चले जाते हैं और शब्दावली स्वयं बहस का केंद्र बन जाती है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ''हम दलित नहीं'' का कथन इतिहास का निषेध नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं कि जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता या सामाजिक अन्याय के अनुभवों को नकार दिया जाए। इतिहास को नकारना और इतिहास को पहचान का स्थायी आधार बना लेना–दोनों ही अतिवादी स्थितियाँ हैं। इतिहास को समझना आवश्यक है, किंतु भविष्य का निर्माण इतिहास की पीड़ा को ही अंतिम परिचय बनाकर नहीं किया जा सकता। ''हम दलित नहीं'' का वास्तविक आशय यह है कि कोई भी समुदाय अपने ऊपर थोपी गई स्थिति से अधिक है। उसकी पहचान केवल इस बात से निर्धारित नहीं होती कि उसके साथ क्या हुआ, बल्कि इस बात से भी होती है कि वह क्या सोचता है, किन मूल्यों में विश्वास करता है और किस दिशा में आगे बढ़ना चाहता है। किसी व्यक्ति या समुदाय को केवल उसके दमन के इतिहास से परिभाषित करना उतना ही अधूरा है जितना उसके इतिहास को पूरी तरह भूल जाना।

किसी भी स्वाभिमानी समाज का लक्ष्य अपने घावों को समझना होता है, घावों को ही अपना परिचय बना लेना नहीं। ''पददलित'', ''दलित'' और ''महादलित'' जैसी संज्ञाएँ इतिहास, समाजशास्त्र और राजनीति के अध्ययन में उपयोगी हो सकती हैं, किंतु उन्हें अंतिम और अनिवार्य आत्मपहचान मान लेना उचित नहीं है। मनुष्य की पहचान उसके दमन से नहीं, उसकी गरिमा से निर्मित होनी चाहिए; उसके अपमान से नहीं, उसके अधिकार–बोध से; उसकी पराजय से नहीं, उसकी चेतना से। इसलिए ''हम दलित नहीं'' केवल एक नारा नहीं है। यह उस वैचारिक आग्रह का प्रतिपक्ष है जो वंचित समुदायों को स्थायी रूप से उनकी पीड़ा के नाम से पहचानना चाहता है। यह आत्मसम्मान, आत्मनिर्णय और सम्मान–आधारित पहचान की घोषणा है। सामाजिक न्याय का लक्ष्य ''दलित'', ''पददलित'' या ''महादलित'' जैसी नई–नई संज्ञाओं का विस्तार नहीं, बल्कि ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण है, जहाँ किसी मनुष्य को अपनी पहचान व्यक्त करने के लिए दमन और वंचना की शब्दावली का सहारा न लेना पड़े। यही ''हम दलित नहीं'' की मूल वैचारिक सार्थकता है।

– देवचंद्र भारती 'प्रखर'

आंबेडकरवादी साहित्य : मूल्यांकन की कसौटियाँ और आलोचना-दृष्टि

- देवचंद्र भारती 'प्रखर'

प्रस्तावना

किसी भी साहित्यिक धारा की वास्तविक शक्ति केवल उसके रचनात्मक विस्तार में नहीं, बल्कि उसकी वैचारिक स्पष्टता में निहित होती है। जिस साहित्य के पास अपनी कसौटियाँ नहीं होतीं, उसका मूल्यांकन अंततः दूसरे प्रतिमानों के आधार पर होने लगता है। यही स्थिति लंबे समय तक आंबेडकरवादी साहित्य के साथ भी बनी रही। डॉ. आंबेडकर के विचारों से प्रेरित अनेक रचनाएँ सामने आईं, परंतु यह प्रश्न लगातार बना रहा कि किसी रचना को आंबेडकरवादी साहित्य कहने का आधार क्या है? क्या केवल जाति-पीड़ा का वर्णन पर्याप्त है? क्या लेखक की सामाजिक पृष्ठभूमि ही उसकी पहचान का आधार है? क्या प्रतिरोध का स्वर ही आंबेडकरवादी साहित्य की अंतिम पहचान है? इन प्रश्नों का उत्तर दिए बिना आंबेडकरवादी साहित्य की अवधारणा को स्थिर नहीं किया जा सकता। आंबेडकरवादी साहित्य केवल एक भावनात्मक आग्रह नहीं, बल्कि एक वैचारिक अनुशासन है। इसलिए उसकी अपनी मूल्यांकन-पद्धति और आलोचना-दृष्टि का निर्धारण आवश्यक है।

1. आंबेडकरवादी साहित्य की पहचान का आधार

आंबेडकरवादी साहित्य की पहचान किसी जाति-विशेष से नहीं, बल्कि विचार-विशेष से होती है। डॉ. आंबेडकर ने स्वयं जन्माधारित पहचान को अस्वीकार करते हुए मनुष्य के मूल्यांकन का आधार उसके विचार और कर्म को माना। इसलिए कोई भी रचना केवल इस कारण आंबेडकरवादी नहीं हो जाती कि उसका लेखक किसी वंचित समुदाय से आता है। उसी प्रकार कोई रचना केवल इसलिए आंबेडकरवादी साहित्य की श्रेणी से बाहर नहीं हो जाती कि उसका लेखक किसी अन्य सामाजिक पृष्ठभूमि का है। आंबेडकरवादी साहित्य की पहली और सबसे महत्वपूर्ण कसौटी यह है कि वह समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय और वैज्ञानिक दृष्टि के मूल्यों के प्रति कितनी प्रतिबद्ध है। यदि कोई रचना पीड़ा का चित्रण तो करती है, लेकिन उसके समाधान के रूप में भाग्यवाद, ईश्वरवादी नियति या परंपरागत सामाजिक संरचनाओं को स्वीकार करती है, तो वह आंबेडकरवादी साहित्य नहीं कही जा सकती। डॉ. आंबेडकर ने जाति-व्यवस्था की आलोचना करते हुए स्पष्ट कहा था-''जातिप्रथा केवल श्रम का विभाजन नहीं है, यह श्रमिकों का विभाजन भी है।'' 1 यह कथन जाति के वास्तविक स्वरूप को उद्घाटित करता है। आंबेडकर जाति को केवल सामाजिक पहचान की व्यवस्था नहीं मानते, बल्कि मनुष्य की क्षमता, श्रम और अवसरों को नियंत्रित करने वाली संरचना के रूप में देखते हैं। इसलिए आंबेडकरवादी साहित्य में जाति का चित्रण केवल अनुभव का विषय नहीं, बल्कि सामाजिक विश्लेषण का विषय भी है। वह जाति के दुष्परिणामों का वर्णन करने के साथ-साथ उसके वैचारिक और संस्थागत आधारों को भी उजागर करता है।

2. पीड़ा नहीं, वैचारिक चेतना महत्वपूर्ण है

आंबेडकरवादी साहित्य को केवल दुःख, अपमान और उत्पीड़न का साहित्य मान लेना एक गंभीर भूल है। पीड़ा का वर्णन अनेक प्रकार के साहित्य में मिलता है। आंबेडकरवादी साहित्य को विशिष्ट बनाने वाली चीज पीड़ा नहीं, बल्कि उसकी वैचारिक व्याख्या है। डॉ. आंबेडकर ने अस्पृश्यता और सामाजिक अन्याय को केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं माना, बल्कि उसे एक संगठित सामाजिक व्यवस्था का परिणाम बताया। इसलिए आंबेडकरवादी साहित्य भी अन्याय के अनुभव को उसके सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक स्रोतों से जोड़कर देखता है। वह केवल आँसू नहीं दिखाता, बल्कि उन कारणों को भी उजागर करता है जिनसे आँसू उत्पन्न होते हैं। यही कारण है कि आंबेडकरवादी साहित्य में करुणा के साथ-साथ विश्लेषण भी मिलता है और अनुभव के साथ-साथ विचार भी।

3. लेखक की जाति नहीं, विचार महत्वपूर्ण है

आंबेडकरवादी साहित्य के क्षेत्र में एक प्रवृत्ति यह भी दिखाई देती है कि लेखक की जाति को ही उसकी वैचारिक प्रामाणिकता का प्रमाण मान लिया जाता है। यह दृष्टिकोण स्वयं डॉ. आंबेडकर के चिंतन के विरुद्ध है। यदि किसी लेखक की

रचना में समता, न्याय और वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव है, तो केवल उसका जन्म उसे आंबेडकरवादी साहित्यकार नहीं बना सकता। दूसरी ओर यदि कोई लेखक अपने साहित्य में आंबेडकरवादी मूल्यों को गंभीरता से अभिव्यक्त करता है, तो उसे केवल उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता। आंबेडकरवादी साहित्य जन्म नहीं, चिंतन का प्रश्न है।

4. प्रतिरोध से आगे पुनर्निर्माण की दिशा

आंबेडकरवादी साहित्य को केवल प्रतिरोध के साहित्य के रूप में प्रस्तुत करना भी अधूरा दृष्टिकोण है। प्रतिरोध उसका एक महत्वपूर्ण पक्ष है, किंतु उसका अंतिम लक्ष्य नहीं। डॉ. आंबेडकर ने केवल अन्याय का विरोध नहीं किया, बल्कि एक नए समाज की परिकल्पना भी प्रस्तुत की। इसलिए आंबेडकरवादी साहित्य का उद्देश्य केवल व्यवस्था की आलोचना करना नहीं है, बल्कि समतामूलक समाज के निर्माण की दिशा भी दिखाना है। डॉ. आंबेडकर लिखते हैं- ''आर्थिक संगठन के रूप में जातिप्रथा एक हानिकारक व्यवस्था है, क्योंकि इसमें व्यक्ति की स्वाभाविक शक्तियों का दमन रहता है।''2 यहाँ जाति की आलोचना केवल सामाजिक स्तर पर नहीं, बल्कि आर्थिक और मानवीय स्तर पर भी की गई है। आंबेडकरवादी साहित्य इसी व्यापक दृष्टि को ग्रहण करता है। वह केवल उत्पीड़न का दस्तावेज नहीं बनता, बल्कि यह भी दिखाता है कि अन्यायपूर्ण संरचनाएँ मनुष्य की प्रतिभा, श्रम और विकास की संभावनाओं को किस प्रकार बाधित करती हैं। इसलिए उसका लक्ष्य केवल विरोध दर्ज कराना नहीं, बल्कि ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार विकसित हो सके। यही कारण है कि आंबेडकरवादी साहित्य में संघर्ष के साथ-साथ आशा भी मिलती है, प्रतिरोध के साथ-साथ पुनर्निर्माण भी और आलोचना के साथ-साथ वैकल्पिक दृष्टि भी। यदि कोई रचना केवल आक्रोश तक सीमित रह जाती है और किसी सकारात्मक सामाजिक दिशा की ओर संकेत नहीं करती, तो उसकी सीमाओं को पहचानना आवश्यक है।

5. आंबेडकरवादी आलोचना-दृष्टि की आवश्यकता

रचना जितनी महत्वपूर्ण होती है, उतनी ही महत्वपूर्ण आलोचना भी होती है। बिना आलोचना के कोई भी साहित्यिक धारा वैचारिक रूप से परिपक्व नहीं हो सकती। लंबे समय तक हिंदी साहित्य की आलोचना मुख्यत: रस, सौंदर्य, शिल्प और भाषा जैसे मानकों पर केंद्रित रही। ये तत्व महत्वपूर्ण हैं, किंतु आंबेडकरवादी साहित्य के मूल्यांकन के लिए पर्याप्त नहीं हैं। आंबेडकरवादी आलोचना का पहला प्रश्न यह होना चाहिए कि रचना मनुष्य की गरिमा के प्रश्न को किस प्रकार देखती है। क्या वह सामाजिक असमानता की पहचान करती है? क्या वह अन्याय के स्रोतों को उजागर करती है? क्या वह वैज्ञानिक दृष्टि का समर्थन करती है? क्या वह समता और न्याय के पक्ष में खड़ी होती है? इन प्रश्नों के बिना आंबेडकरवादी आलोचना की कोई सार्थक दिशा विकसित नहीं हो सकती।

6. स्त्री-विमर्श, पहचान और आंबेडकरवादी दृष्टि

समकालीन साहित्यिक विमर्शों में प्राय: यह प्रवृत्ति दिखाई देती है कि स्त्री-विमर्श, जाति-विमर्श और अन्य पहचान-आधारित विमर्शों को बिना किसी आलोचनात्मक विवेक के स्वीकार कर लिया जाता है। आंबेडकरवादी दृष्टि इस प्रकार की बौद्धिक सुविधा को स्वीकार नहीं करती। डॉ. आंबेडकर ने महिलाओं की शिक्षा, सम्मान और सामाजिक भागीदारी का समर्थन किया, किंतु उनका उद्देश्य स्त्री और पुरुष के बीच संघर्ष पैदा करना नहीं था। वे सामाजिक परिवर्तन को परिवार और समाज के सामूहिक विकास से जोड़कर देखते थे। उन्होंने स्पष्ट कहा था-''महिलाओं की प्रगति के आधार से मैं उस समाज की प्रगति को मापता हूँ।''3 यह कथन महिला-सशक्तीकरण को समाज-सुधार के व्यापक संदर्भ में रखता है, न कि किसी पृथक संघर्ष के रूप में। इसलिए आंबेडकरवादी आलोचना स्त्री-अनुभव को महत्व देती है, किंतु उसे पुरुष-विरोध या सामाजिक विखंडन का आधार नहीं बनाती।

7. वैज्ञानिक दृष्टि : आंबेडकरवादी साहित्य का केंद्रीय तत्व

डॉ. आंबेडकर ने अपने संपूर्ण चिंतन में विवेक, तर्क और प्रमाण को सर्वोच्च महत्व दिया। इसलिए आंबेडकरवादी साहित्य का मूल्यांकन करते समय यह देखना आवश्यक है कि रचना वैज्ञानिक दृष्टि को कितना महत्व देती है। डॉ. आंबेडकर ने लिखा है, ''बुद्ध के धम्म का परमात्मा और आत्मा से कुछ लेना-देना नहीं, उनके धम्म का मृत्यु के उपरान्त के जीवन से कोई सरोकार नहीं है और न ही उनके धम्म का कर्म-काण्डों और धर्मानुष्ठानों से कोई सम्बन्ध है।''4 डॉ. आंबेडकर की यह व्याख्या बुद्ध-धम्म के मानवकेंद्रित और विवेकाधारित स्वरूप को स्पष्ट करती है। यहाँ धर्म का आधार किसी अलौकिक सत्ता, परलोक अथवा कर्मकाण्ड को नहीं बनाया गया है, बल्कि मनुष्य और उसके जीवन को केंद्र में रखा गया है। यही कारण है कि आंबेडकरवादी साहित्य भी अंधविश्वास, चमत्कारवाद, भाग्यवाद और जन्माधारित श्रेष्ठता की धारणाओं को स्वीकार नहीं करता। वह मनुष्य की वास्तविक समस्याओं, सामाजिक

संबंधों और न्यायपूर्ण जीवन-व्यवस्था को महत्व देता है।

जाति के तथाकथित वैज्ञानिक औचित्य को खारिज करते हुए डॉ. आंबेडकर ने कहा था-''जाति का कोई भी वैज्ञानिक उद्‌गम कारण नहीं है और जो इसे सुजननिकी के आधार पर सही बताना चाहते हैं, वे विज्ञान का नाम लेकर घोर अवैज्ञानिक विचार प्रस्तुत कर रहे हैं।''5 यह कथन आंबेडकरवादी साहित्य की वैज्ञानिक आधारभूमि को स्पष्ट करता है। जाति, वर्ण, जन्माधारित श्रेष्ठता अथवा धार्मिक नियति जैसे विचारों की स्वीकृति आंबेडकरवादी चिंतन के विरुद्ध है। इसलिए किसी रचना का मूल्यांकन करते समय यह देखना आवश्यक है कि वह तर्क, प्रमाण और विवेक के पक्ष में खड़ी है या नहीं। आंबेडकरवादी साहित्य मनुष्य को प्रश्न पूछने की शक्ति देता है। वह श्रद्धा से अधिक विवेक पर और परंपरा से अधिक सत्य पर बल देता है। यदि कोई रचना अंधविश्वास, चमत्कारवाद, भाग्यवाद अथवा अवैज्ञानिक मान्यताओं को महिमामंडित करती है, तो वह आंबेडकरवादी साहित्य की मूल भावना से दूर चली जाती है। आंबेडकरवादी साहित्य मनुष्य को प्रश्न पूछने की शक्ति देता है। वह श्रद्धा से अधिक विवेक पर और परंपरा से अधिक सत्य पर बल देता है।

8. आलोचना का उद्देश्य प्रशंसा नहीं, मूल्यांकन है

आज एक बड़ी समस्या यह है कि अनेक साहित्यिक समूहों में आलोचना का स्थान प्रशंसा ने ले लिया है। किसी लेखक या रचना पर प्रश्न उठाना असहज माना जाने लगा है। यह स्थिति किसी भी साहित्यिक धारा के लिए घातक है। आंबेडकरवादी साहित्य की आलोचना-दृष्टि का उद्देश्य किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा बढ़ाना या घटाना नहीं, बल्कि रचना के वैचारिक और साहित्यिक मूल्य का निष्पक्ष परीक्षण करना है। ''आंबेडकरवादी आलोचना भावनात्मक प्रशंसा या निंदा पर आधारित नहीं है।''6 जहाँ आलोचना समाप्त हो जाती है, वहाँ विचार भी स्थिर हो जाता है। इसलिए आंबेडकरवादी साहित्य को एक सशक्त आलोचनात्मक परंपरा विकसित करनी होगी, जो व्यक्ति नहीं, विचार को केंद्र में रखे। डॉ. आंबेडकर की दृष्टि में किसी भी विचार या व्यवस्था का अंतिम केंद्र मनुष्य है। वे स्पष्ट लिखते हैं कि ''बुद्ध के धम्म का केन्द्र मनुष्य और पृथ्वी पर अपने जीवन में मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध है।''7 यह कथन आंबेडकरवादी साहित्य की मूल दिशा को भी स्पष्ट करता है। आंबेडकरवादी साहित्य का सरोकार किसी अलौकिक सत्ता, कर्मकाण्ड या जन्माधारित विशेषाधिकार से नहीं, बल्कि मनुष्य, उसकी गरिमा, उसके अधिकारों और उसके न्यायपूर्ण सामाजिक संबंधों से है। इसलिए किसी रचना का अंतिम मूल्यांकन इस आधार पर होना चाहिए कि वह मनुष्य की स्वतंत्रता, समता और गरिमा के पक्ष में कितनी दृढ़ता से खड़ी होती है।

निष्कर्ष

आंबेडकरवादी साहित्य की पहचान केवल जातिगत अनुभव, प्रतिरोध या भावनात्मक आक्रोश से नहीं होती। उसकी वास्तविक पहचान समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय और वैज्ञानिक दृष्टि के प्रति उसकी प्रतिबद्धता में निहित है। यही उसकी मूल कसौटी है और यही उसकी आलोचना-दृष्टि का आधार भी। आज आवश्यकता इस बात की है कि आंबेडकरवादी साहित्य को भावनात्मक आग्रहों से मुक्त कर एक सुविचारित वैचारिक अनुशासन के रूप में विकसित किया जाए। इसके लिए स्पष्ट मूल्यांकन मानदंड, स्वतंत्र आलोचना-दृष्टि और बौद्धिक ईमानदारी अनिवार्य हैं। जब तक यह कार्य नहीं होगा, तब तक आंबेडकरवादी साहित्य का विस्तार तो होगा, किंतु उसकी वैचारिक शक्ति सीमित रहेगी। आंबेडकरवादी साहित्य का भविष्य रचनाओं की संख्या में नहीं, बल्कि उसकी वैचारिक स्पष्टता और आलोचनात्मक परिपक्वता में निहित है। यही वह दिशा है जो उसे एक स्थायी और प्रभावशाली साहित्यिक परंपरा के रूप में स्थापित कर सकती है।

संदर्भ

1. बाबा साहेब डॉ० आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय, खंड 1, जातिप्रथा-उन्मूलन, खंड 1, डॉ० आंबेडकर प्रतिष्ठान नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृष्ठ 54
2. वहीं, पृष्ठ 55
3. बाबा साहेब डॉ० आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय, खंड 39, नागपुर महिला सम्मेलन, 20 जुलाई 1942, डॉ० आंबेडकर प्रतिष्ठान नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृष्ठ 372
4. बाबा साहेब डॉ० आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय, खंड 22, बुद्ध और उनका धम्म, डॉ० आंबेडकर प्रतिष्ठान नई दिल्ली, संस्करण 2020, पृष्ठ 108
5. बाबा साहेब डॉ० आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय, खंड 1, जातिप्रथा-उन्मूलन, खंड 1, डॉ० आंबेडकर प्रतिष्ठान नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृष्ठ 56
6. देवचंद्र भारती 'प्रखर', ''आंबेडकरवादी साहित्य : अवधारणा, सीमा और प्रतिमान'', आंबेडकरवादी साहित्य, जनवरी-मार्च 2026, पृष्ठ 5
7. बाबा साहेब डॉ० आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय, खंड 22, बुद्ध और उनका धम्म, डॉ० आंबेडकर प्रतिष्ठान नई दिल्ली, संस्करण 2020, पृष्ठ 108

तुलसीराम की आत्मकथाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक यथार्थ

- डॉ. दुर्गेश कुमार राय

सारांश-

हिंदी आत्मकथा साहित्य में तुलसीराम का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी आत्मकथाएँ मुर्दहिया और मणिकर्णिका केवल व्यक्तिगत जीवन की कथा नहीं हैं, बल्कि भारतीय समाज के बहुआयामी सामाजिक यथार्थ का प्रामाणिक दस्तावेज भी हैं। इन आत्मकथाओं में ग्रामीण जीवन, जातिगत विषमता, शिक्षा का संघर्ष, सांस्कृतिक परंपराएँ, लोकविश्वास, सामाजिक संबंध, वैचारिक परिवर्तन तथा राजनीतिक चेतना जैसे अनेक पक्षों का सजीव चित्रण मिलता है। तुलसीराम ने अपने जीवनानुभवों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वे व्यापक सामाजिक अनुभवों का प्रतिनिधित्व करने लगते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में उनकी आत्मकथाओं में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि तुलसीराम का आत्मकथा-साहित्य भारतीय समाज की संरचना, उसके अंतर्विरोधों और परिवर्तन की संभावनाओं को समझने का महत्वपूर्ण स्रोत है।

बीज शब्द : तुलसीराम, मुर्दहिया, मणिकर्णिका, सामाजिक यथार्थ, आत्मकथा, शिक्षा, संस्कृति, जाति।

1. प्रस्तावना

आत्मकथा साहित्य की वह विधा है जिसमें लेखक अपने जीवन के अनुभवों, संघर्षों, उपलब्धियों और संवेदनाओं का आत्मपरक चित्रण करता है। किंतु आत्मकथा का महत्व केवल व्यक्तिगत जीवन तक सीमित नहीं होता। लेखक का जीवन जिस सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिवेश में निर्मित होता है, उसकी छाप भी आत्मकथा में स्वाभाविक रूप से दिखाई देती है। इस प्रकार आत्मकथा व्यक्ति और समाज के अंतर्संबंधों को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम बन जाती है। इसी कारण आधुनिक साहित्यिक अध्ययन में आत्मकथाओं को सामाजिक इतिहास, सांस्कृतिक अध्ययन और समाजशास्त्रीय विश्लेषण के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में देखा जाता है। हिंदी आत्मकथा साहित्य में तुलसीराम की मुर्दहिया और मणिकर्णिका विशेष महत्व रखती हैं। इन कृतियों में लेखक ने अपने जीवन के माध्यम से ग्रामीण भारतीय समाज की सामाजिक संरचना, जातिगत संबंधों, आर्थिक अभावों, सांस्कृतिक परंपराओं और वैचारिक विकास की प्रक्रिया का विस्तृत चित्रण किया है। उनके आत्मकथा-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें व्यक्तिगत अनुभव और सामाजिक यथार्थ एक-दूसरे से गहरे रूप में जुड़े हुए हैं। लेखक का जीवन एक व्यक्ति का जीवन न रहकर एक पूरे सामाजिक समुदाय के अनुभवों का प्रतिनिधित्व करने लगता है।

तुलसीराम की आत्मकथाओं में सामाजिक यथार्थ अनेक स्तरों पर अभिव्यक्त हुआ है। जातिगत भेदभाव, शिक्षा का संघर्ष, ग्रामीण संस्कृति, लोकविश्वास, सामाजिक संबंध, राजनीतिक चेतना तथा वैचारिक परिवर्तन जैसे विविध पक्ष इन आत्मकथाओं को व्यापक सामाजिक संदर्भ प्रदान करते हैं।

2. जातिगत भेदभाव और सामाजिक विषमता

तुलसीराम की आत्मकथाओं में सामाजिक यथार्थ का सबसे प्रमुख पक्ष जातिगत भेदभाव का चित्रण है। भारतीय समाज की पारंपरिक व्यवस्था में जाति व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, सम्मान और अवसरों को निर्धारित करने वाली महत्वपूर्ण शक्ति रही है। सामाजिक जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं था, जो जातिगत प्रभावों से पूर्णतः मुक्त हो। तुलसीराम ने अपने अनुभवों के माध्यम से यह दिखाया है कि जातिगत पूर्वाग्रह किस प्रकार व्यक्ति के आत्मसम्मान और सामाजिक अस्तित्व को प्रभावित करते हैं। वे लिखते हैं- ''मुझे देखते ही हीरालाल ने कहा - का रे चमरा तं ये हों आ गइले। इस पर मैंने उनसे कहा कि आप मुझसे इस तरह क्यों बात करते हैं? मेरा इतना कहना था कि हीरालाल मेरे ऊपर शेर की तरह झपट पड़े और जब तक चिंतामणि सिंह उन्हें पकड़ें, वे तब तक मुझे चार चांटे लगा चुके थे। ये वही हीरालाल थे, जो मुझे बुलाने के लिए हमेशा 'चमरा चमरा' शब्द का इस्तेमाल किया करते थे। चिंतामणि के निवास

से जाने के पहले उन्होंने मुझे यह कहकर धमकाया कि 'देखत हईं तू कैसे इम्तिहान देला'। हीरालाल के व्यवहार से मैं बहुत डर गया था। उस समय जातीय हिंसा के लिए कुख्यात चंडेसर मेरे लिए साकार हो उठा।'' यह प्रसंग ग्रामीण समाज में व्याप्त जातिगत असमानता को प्रत्यक्ष रूप से सामने लाता है। यहाँ जातिसूचक संबोधन केवल अपमानजनक शब्द नहीं है, बल्कि सामाजिक श्रेष्ठता और प्रभुत्व की मानसिकता का प्रतीक है। लेखक जब इस व्यवहार का विरोध करता है, तब उसके विरुद्ध हिंसक प्रतिक्रिया सामने आती है। इससे स्पष्ट होता है कि जातिगत व्यवस्था केवल सामाजिक विभाजन तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह दमन और नियंत्रण की व्यवस्था के रूप में भी कार्य करती थी। तुलसीराम के अनुभव यह भी बताते हैं कि जातिगत भेदभाव व्यक्ति के आत्मविश्वास और मनोविज्ञान को प्रभावित करता है। लगातार अपमान और बहिष्कार की स्थितियाँ व्यक्ति के भीतर भय और असुरक्षा की भावना उत्पन्न करती हैं। किंतु लेखक इन परिस्थितियों के सामने समर्पण नहीं करता, बल्कि शिक्षा और संघर्ष के माध्यम से अपनी पहचान निर्मित करने का प्रयास करता है। यही संघर्ष उनकी आत्मकथाओं को सामाजिक यथार्थ का महत्वपूर्ण दस्तावेज बनाता है।

3. शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता

तुलसीराम की आत्मकथाओं में शिक्षा केवल ज्ञान अर्जित करने का माध्यम नहीं है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और आत्मनिर्माण की प्रक्रिया का केंद्रीय तत्व है। भारतीय समाज में लंबे समय तक शिक्षा पर कुछ विशेष वर्गों का वर्चस्व बना रहा, जिसके कारण वंचित समुदायों के लिए शिक्षा प्राप्त करना अत्यंत कठिन था। ऐसी परिस्थितियों में शिक्षा का प्रश्न केवल विद्यालय तक पहुँचने का प्रश्न नहीं रह जाता, बल्कि वह सामाजिक समानता, आत्मसम्मान और भविष्य निर्माण से जुड़ जाता है। तुलसीराम की आत्मकथाओं में शिक्षा का संघर्ष इसी व्यापक सामाजिक संदर्भ में सामने आता है। मुर्दहिया में लेखक का बाल्यकाल अत्यंत अभावग्रस्त परिस्थितियों में बीतता है। आर्थिक कठिनाइयाँ, सामाजिक विषमता और सीमित संसाधन बार-बार उनकी शिक्षा के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं। इसके बावजूद उनके भीतर पढ़ने और आगे बढ़ने की तीव्र आकांक्षा बनी रहती है। शिक्षा उनके लिए केवल व्यक्तिगत सफलता का साधन नहीं, बल्कि उस सामाजिक स्थिति से बाहर निकलने का माध्यम है जिसमें उनका समुदाय लंबे समय से जीवन व्यतीत करता आया था। इस संदर्भ में लेखक एक मार्मिक प्रसंग का उल्लेख करते हैं-''जोगी बाबा ने गाया -जइसन कहत बाड़ा तुलसी, वइसन दुखवा में सब झुलसी। बड़ ससतिया सहबा राम।...जइसन भइला पंचवीं पास, वइसन नोकरी के नाहिं आस। बड़ ससतिया सहबा राम।...जोगी बाबा के ये तीन छंद मुझे आशा-निराशा की रसरी में लपेटकर आगे-पीछे दो विपरीत दिशाओं में खींचने लगे। ऐसा लगता था कि मानो मेरा अस्तित्व चिथड़े-चिथड़े होकर दो भागों में बंटने लगा हो। थोड़ी देर बाद जोगी बाबा साधुओं वाला अपना लमका चिमटा बजाते हुए 'बम बम लहरी' की ध्वनि के साथ अपनी झोपड़ी की ओर चल पड़े और मैं उन्हें दृश्यपटल पर ओझल होने तक देखता रहा। भयाक्रांत इसलिए भी था कि जोगी बाबा की कोई भी गायी हुई वाणी कभी गलत नहीं होती थी। छुट्टियों का वेतन पहाड़ सा लगने लगा था। क्योंकि उसके बाद ही मेरी छठी कक्षा के आगे की पढ़ाई का भविष्य निर्धारित होने वाला था।'' यह प्रसंग शिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया से जुड़े मानसिक संघर्ष को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करता है। यहाँ लेखक केवल परीक्षा उत्तीर्ण करने की चिंता से ग्रस्त नहीं है, बल्कि उसके सामने पूरे जीवन का प्रश्न उपस्थित है। शिक्षा जारी रह पाएगी या नहीं, यह केवल व्यक्तिगत इच्छा पर निर्भर नहीं है; इसके पीछे आर्थिक स्थिति, पारिवारिक संसाधन और सामाजिक परिस्थितियाँ भी निर्णायक भूमिका निभाती हैं। यही कारण है कि लेखक के भीतर आशा और निराशा का द्वंद्व दिखाई देता है।

तुलसीराम की आत्मकथाओं में शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का माध्यम बनकर उभरती है। ग्रामीण परिवेश से निकलकर उच्च शिक्षा तक पहुँचने की उनकी यात्रा यह सिद्ध करती है कि शिक्षा व्यक्ति को नए अवसर प्रदान करती है। शिक्षा के माध्यम से लेखक केवल ज्ञान प्राप्त नहीं करता, बल्कि समाज को समझने की दृष्टि भी विकसित करता है। वह अपने अनुभवों का विश्लेषण करने लगता है और सामाजिक संरचना के अंतर्विरोधों को पहचानने लगता है। इस प्रकार शिक्षा चेतना के विस्तार का भी माध्यम बनती है। तुलसीराम की आत्मकथाओं का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे शिक्षा को व्यक्तिगत उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत नहीं करते। उनके यहाँ शिक्षा सामूहिक परिवर्तन की संभावना से जुड़ी हुई है। लेखक का अनुभव यह संकेत करता है कि जब वंचित समुदायों के लोग शिक्षा प्राप्त करते हैं, तब उनके भीतर आत्मसम्मान, अधिकार-बोध और सामाजिक चेतना का विकास होता है। यही कारण है कि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। तुलसीराम के जीवन में शिक्षा संघर्ष, धैर्य और निरंतरता का परिणाम है। अनेक कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने अध्ययन को नहीं छोड़ा। यह संघर्ष इस बात का प्रमाण है

कि शिक्षा व्यक्ति के जीवन की दिशा बदलने की क्षमता रखती है। उनकी आत्मकथाएँ इस तथ्य को स्थापित करती हैं कि शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया नहीं, बल्कि सामाजिक गतिशीलता, आत्मनिर्माण और मानवीय गरिमा की प्राप्ति का सशक्त माध्यम है।

4. लोकसंस्कृति और सांस्कारिक जीवन

तुलसीराम की आत्मकथाओं में सामाजिक यथार्थ का एक महत्वपूर्ण पक्ष ग्रामीण लोकसंस्कृति और सांस्कारिक जीवन का चित्रण है। सामान्यत: सामाजिक अध्ययन में वंचित समुदायों की चर्चा उनके आर्थिक अभाव, सामाजिक उत्पीड़न या शैक्षिक पिछड़ेपन के संदर्भ में अधिक की जाती है, किंतु तुलसीराम की आत्मकथाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि इन समुदायों का सांस्कृतिक जीवन भी अत्यंत समृद्ध, जीवंत और रचनात्मक था। लेखक ने ग्रामीण समाज की परंपराओं, लोककला, रीति-रिवाजों, उत्सवों और सामुदायिक जीवन का ऐसा चित्र प्रस्तुत किया है जो सामाजिक यथार्थ की समझ को अधिक व्यापक बनाता है।

मुर्दहिया में लेखक ने ग्रामीण जीवन की अनेक सांस्कृतिक गतिविधियों का उल्लेख किया है। विशेष रूप से कोहबर कला का वर्णन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि यह ग्रामीण समाज की सौंदर्य-चेतना और सांस्कृतिक सृजनशीलता को सामने लाता है। तुलसीराम लिखते हैं-''दलितों की झोपड़ियों की दीवारों पर कोहबर कलाकृतियां विभिन्न रंगों में उभरकर अपना एक अलग ही सौंदर्य बिखरने लगती थीं। दीवार पर गेरू तथा हल्दी से जो पेंटिंग की जाती थी, उसे कोहबर कहा जाता था। ऐसी कलाकृतियों में केले का पेड़, हाथी, घोड़े, औरत, धनुष-बाण आदि शामिल होते थे। इन कलाकृतियों को 'कोहबर लिखना' कहा जाता था।''

यह उद्धरण ग्रामीण जीवन के उस सांस्कृतिक पक्ष को उद्घाटित करता है जिसे सामान्यत: साहित्य और इतिहास में पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया। कोहबर केवल सजावट का माध्यम नहीं था, बल्कि लोकजीवन की सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक था। इन चित्रों में ग्रामीण समाज की कल्पना, जीवन-दृष्टि और सामूहिक अनुभवों की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। विशेष रूप से विवाह और अन्य शुभ अवसरों पर बनाए जाने वाले ये चित्र सामाजिक जीवन में कला की उपस्थिति को प्रमाणित करते हैं। तुलसीराम का यह वर्णन उस धारणा का भी खंडन करता है कि आर्थिक रूप से वंचित समुदाय सांस्कृतिक दृष्टि से भी पिछड़े होते हैं। वस्तुत: इन समुदायों ने अपने सीमित संसाधनों के भीतर ऐसी सांस्कृतिक परंपराएँ विकसित की थीं जो उनकी सामुदायिक पहचान और सामाजिक संबंधों को सुदृढ़ बनाती थीं। गेरू, हल्दी और अन्य स्थानीय साधनों से निर्मित चित्र यह दर्शाते हैं कि लोकजीवन में सृजनशीलता का आधार केवल आर्थिक संसाधन नहीं, बल्कि सामूहिक अनुभव और सांस्कृतिक परंपरा भी होती है।

तुलसीराम की आत्मकथाओं में सांस्कारिक जीवन का चित्रण भी विशेष महत्व रखता है। जन्म, विवाह और अन्य सामाजिक अवसर केवल व्यक्तिगत घटनाएँ नहीं थे, बल्कि पूरे समुदाय की सहभागिता के अवसर होते थे। इन अवसरों पर लोकगीत, सामूहिक श्रम, सांस्कृतिक आयोजन और पारंपरिक रीति-रिवाज सामाजिक जीवन को जीवंत बनाते थे। लेखक ने ऐसे अनेक प्रसंगों के माध्यम से यह दिखाया है कि ग्रामीण समाज का सांस्कृतिक जीवन सामूहिकता की भावना पर आधारित था। लोकसंस्कृति का एक महत्वपूर्ण पक्ष सामुदायिक स्मृति का संरक्षण भी है। जिन समुदायों के पास लिखित इतिहास अपेक्षाकृत कम था, वहाँ लोकपरंपराएँ ही इतिहास और संस्कृति के संवाहक का कार्य करती थीं। लोकगीत, कहावतें, चित्रकला और सांस्कारिक परंपराएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी सांस्कृतिक ज्ञान का हस्तांतरण करती थीं। तुलसीराम की आत्मकथाएँ इन सांस्कृतिक रूपों को दर्ज करके उन्हें साहित्यिक और ऐतिहासिक महत्व प्रदान करती हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि तुलसीराम लोकसंस्कृति का चित्रण केवल रोमानी दृष्टि से नहीं करते। वे उसके सामाजिक संदर्भों को भी सामने लाते हैं। उनके यहाँ संस्कृति जीवन से पृथक कोई वस्तु नहीं है, बल्कि वह सामाजिक संबंधों, सामुदायिक अनुभवों और दैनिक व्यवहारों से जुड़ी हुई है। इसलिए लोकसंस्कृति का वर्णन सामाजिक यथार्थ की व्यापक समझ विकसित करने में सहायक बनता है।

5. विवाह संस्कार और लोकज्ञान

तुलसीराम की आत्मकथाओं में विवाह-संस्कार केवल एक सामाजिक अनुष्ठान के रूप में प्रस्तुत नहीं होते, बल्कि वे ग्रामीण समाज की सांस्कृतिक चेतना, सामुदायिक सहभागिता और लोकज्ञान की परंपरा को भी अभिव्यक्त करते हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन में विवाह एक ऐसा अवसर होता है जहाँ सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक मान्यताओं और सामूहिक जीवन के विविध रूप एक साथ दिखाई देते हैं। तुलसीराम ने इन अवसरों का चित्रण केवल एक दर्शक के रूप में नहीं किया है, बल्कि एक सहभागी के रूप में किया है। इसलिए उनके यहाँ

विवाह-संस्कारों का वर्णन सामाजिक यथार्थ के एक महत्वपूर्ण पक्ष को उद्घाटित करता है।

ग्रामीण समाज में विवाह केवल दो व्यक्तियों का संबंध नहीं माना जाता था, बल्कि वह दो परिवारों और व्यापक सामाजिक समुदाय के बीच संबंध स्थापित करने का माध्यम भी था। विवाह के अवसर पर आयोजित होने वाली विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियाँ सामुदायिक जीवन को सुदृढ़ बनाती थीं। लोकगीत, हास-परिहास, शास्त्रार्थ और सामूहिक सहभागिता इन आयोजनों की प्रमुख विशेषताएँ थीं। तुलसीराम ऐसे ही एक प्रसंग का उल्लेख करते हुए लिखते हैं-''मजलिस में हकलाते हुए खड़ा होकर मैं बारातियों से पूछा कि रामचरितमानस की पहली चौपाई क्या है? मेरे इस सवाल पर पूरी मजलिस में सन्नाटा छा गया। काफी देर तक कोई उत्तर नहीं आया। सन्नाटा जारी था। इसी बीच गाँव के फेरू काका ने जोर से चिल्लाकर कहा- बता दे बेटा, बता दे। मैं उत्साहवश गाकर सुनाया-'बंदौ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।। अमिय मुरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू।।' इस उत्तर के साथ ही वहाँ इकट्ठे सैकड़ों घराती खड़े होकर तालियाँ बजाने लगे।''

यह प्रसंग ग्रामीण समाज की ज्ञान-परंपरा को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यहाँ ज्ञान का स्रोत केवल विद्यालय या औपचारिक शिक्षा नहीं है। धार्मिक ग्रंथों, लोकपरंपराओं और मौखिक संस्कृति के माध्यम से भी ज्ञान अर्जित किया जाता है। लेखक की आयु अपेक्षाकृत कम होने के बावजूद उसका धार्मिक ग्रंथों का ज्ञान सामाजिक मान्यता प्राप्त करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाज में बौद्धिक क्षमता और स्मरण-शक्ति को भी सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। यह प्रसंग एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य की ओर भी संकेत करता है। सामान्यत: वंचित समुदायों को ज्ञान और शिक्षा से दूर समझा जाता रहा है, किंतु तुलसीराम का अनुभव इस धारणा का खंडन करता है। लेखक का धार्मिक ग्रंथों का ज्ञान यह प्रमाणित करता है कि सामाजिक रूप से उपेक्षित समुदायों के भीतर भी ज्ञान प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा और बौद्धिक विकास की संभावनाएँ मौजूद थीं। अवसरों और संसाधनों की कमी के बावजूद ये समुदाय अपनी सांस्कृतिक और बौद्धिक परंपराओं को बनाए हुए थे।

विवाह-संस्कारों में होने वाले ऐसे संवाद सामाजिक संबंधों को भी सुदृढ़ बनाते थे। सामूहिक उपस्थिति में ज्ञान का प्रदर्शन केवल व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का विषय नहीं था, बल्कि वह सामुदायिक गौरव से भी जुड़ा हुआ था। लेखक को मिली प्रशंसा केवल उसके व्यक्तिगत ज्ञान की स्वीकृति नहीं है, बल्कि उस सामाजिक पृष्ठभूमि की भी स्वीकृति है जिससे वह आता है। इस प्रकार विवाह-संस्कार सामाजिक समावेशन और सामुदायिक पहचान के निर्माण में भी भूमिका निभाते थे। इस प्रकार मुर्दहिया में वर्णित विवाह-संस्कार केवल सांस्कृतिक अनुष्ठान नहीं हैं, बल्कि वे ग्रामीण समाज की ज्ञान-परंपरा, सामुदायिक चेतना और सांस्कृतिक जीवन के महत्वपूर्ण संकेतक हैं। तुलसीराम इन प्रसंगों के माध्यम से यह स्थापित करते हैं कि सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए केवल आर्थिक और राजनीतिक पक्षों का अध्ययन पर्याप्त नहीं है; सांस्कृतिक और ज्ञानात्मक पक्षों को भी समान महत्व देना आवश्यक है। यही कारण है कि उनकी आत्मकथाओं में विवाह-संस्कार सामाजिक यथार्थ के एक महत्वपूर्ण आयाम के रूप में उभरकर सामने आते हैं।

6. लोकविश्वास और ग्रामीण मनोविज्ञान

तुलसीराम की आत्मकथाओं में ग्रामीण जीवन के चित्रण का एक महत्वपूर्ण पक्ष लोकविश्वासों और उनसे निर्मित मानसिक संसार का है। ग्रामीण समाज केवल आर्थिक और सामाजिक संबंधों से संचालित नहीं होता, बल्कि उसकी संरचना में लोकआस्थाएँ, भविष्यवाणियाँ, परंपरागत धारणाएँ और सांस्कृतिक विश्वास भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये विश्वास व्यक्ति के व्यवहार, निर्णयों और जीवन-दृष्टि को प्रभावित करते हैं। मुर्दहिया में तुलसीराम ने ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख किया है जिनसे ग्रामीण समाज के मनोविज्ञान को समझने में सहायता मिलती है। विशेष रूप से जोगी बाबा का प्रसंग इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। जोगी बाबा गाँव के ऐसे व्यक्ति के रूप में उपस्थित हैं जिनकी कही हुई बातों को लोग गंभीरता से लेते हैं। उनकी वाणी केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि भविष्य और भाग्य से जुड़ी हुई मानी जाती है। तुलसीराम लिखते हैं-''एक लड़के ने मेरे घर के सामने बोला - हे तुलसी, जोगी बाबा आयल हउवैं। इतना सुनते ही जोगी बाबा ने गाया-जइसन कहत बाड़ा तुलसी, वइसन दुखवा में सब झुलसी। बड़ ससतिया सहबा राम।...जइसन भइला पंचवीं पास, वइसन नोकरी के नाहिं आस। बड़ ससतिया सहबा राम।... जइसन मंगला तू बरदान, वइसन जानी तोहें जहांन। बड़ ससतिया सहबा राम। जोगी बाबा के ये तीन छंद मुझे आशा-निराशा की रसरी में लपेटकर आगे-पीछे दो विपरीत दिशाओं में खींचने लगे। ऐसा लगता था कि मानो मेरा अस्तित्व चिथड़े-चिथड़े होकर दो भागों में बंटने लगा हो। थोड़ी देर बाद जोगी बाबा साधुओं वाला

अपना लमका चिमटा बजाते हुए 'बम बम लहरी' की ध्वनि के साथ अपनी झोपड़ी की ओर चल पड़े और मैं उन्हें दृश्यपटल पर ओझल होने तक देखता रहा। भयाक्रांत इसलिए भी था कि जोगी बाबा की कोई भी गायी हुई वाणी कभी गलत नहीं होती थी। छुट्टियों का वेतन पहाड़ सा लगने लगा था। क्योंकि उसके बाद ही मेरी छठी कक्षा के आगे की पढ़ाई का भविष्य निर्धारित होने वाला था।''

यह प्रसंग ग्रामीण मनोविज्ञान की गहरी परतों को उद्घाटित करता है। यहाँ जोगी बाबा की वाणी केवल एक लोकगायक की वाणी नहीं है, बल्कि वह सामुदायिक विश्वास का केंद्र बन जाती है। लेखक स्वयं भी उनकी बातों से प्रभावित होता है और उसके भीतर भविष्य को लेकर आशा तथा आशंका दोनों उत्पन्न हो जाती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि लोकविश्वास व्यक्ति की मानसिक स्थिति और भावनात्मक संसार को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। इस प्रसंग का महत्व केवल इतना नहीं है कि यह ग्रामीण समाज में प्रचलित विश्वासों को सामने लाता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि अनिश्चितताओं से भरे जीवन में लोकविश्वास लोगों को मानसिक सहारा प्रदान करते हैं। आर्थिक अभाव, सीमित अवसर और असुरक्षित भविष्य की परिस्थितियों में लोग ऐसे व्यक्तियों और मान्यताओं पर विश्वास करने लगते हैं जो उन्हें भविष्य के बारे में कोई संकेत दे सकें। इस प्रकार लोकविश्वास सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दोनों स्तरों पर कार्य करते हैं।

तुलसीराम इन विश्वासों का चित्रण करते समय उनका उपहास नहीं करते। वे उन्हें उस सामाजिक परिवेश के हिस्से के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिसमें उनका बचपन और किशोरावस्था बीती। यही कारण है कि उनका वर्णन संतुलित और विश्वसनीय प्रतीत होता है। वे यह दिखाते हैं कि लोकविश्वासों का प्रभाव केवल अशिक्षित लोगों तक सीमित नहीं था, बल्कि वे पूरे सामाजिक वातावरण का हिस्सा थे। ग्रामीण समाज में ऐसे विश्वास सामुदायिक संबंधों को भी प्रभावित करते थे। भविष्यवाणी, लोककथाएँ, लोकगीत और धार्मिक प्रतीक सामूहिक स्मृति का निर्माण करते थे। इनके माध्यम से समाज अपनी आशंकाओं, आकांक्षाओं और अनुभवों को अभिव्यक्ति देता था। इस दृष्टि से लोकविश्वास केवल अंधश्रद्धा का विषय नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक जीवन की सांस्कृतिक संरचना का भी महत्वपूर्ण अंग हैं।

तुलसीराम की आत्मकथाएँ यह संकेत करती हैं कि आधुनिक शिक्षा और वैचारिक विकास के बाद व्यक्ति इन विश्वासों की आलोचनात्मक समीक्षा कर सकता है, किंतु बचपन और किशोरावस्था के अनुभवों में उनका प्रभाव अत्यंत गहरा होता है। यही कारण है कि लेखक वर्षों बाद भी इन घटनाओं को स्मरण करते हुए उनके मनोवैज्ञानिक प्रभाव का उल्लेख करता है। इस प्रकार मुर्दहिया में चित्रित लोकविश्वास और ग्रामीण मनोविज्ञान सामाजिक यथार्थ के उस पक्ष को सामने लाते हैं जिसे केवल आर्थिक या राजनीतिक विश्लेषण से नहीं समझा जा सकता। ये प्रसंग यह स्पष्ट करते हैं कि समाज का मानसिक और सांस्कृतिक संसार भी उसकी सामाजिक संरचना का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। तुलसीराम ने इस संसार का अत्यंत संवेदनशील और प्रामाणिक चित्रण किया है, जिसके कारण उनकी आत्मकथाएँ सामाजिक यथार्थ के बहुआयामी अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण स्रोत बन जाती हैं।

7. वैचारिक परिवर्तन और मानवतावादी दृष्टि

तुलसीराम की आत्मकथाओं में सामाजिक यथार्थ का एक महत्वपूर्ण आयाम वैचारिक परिवर्तन की प्रक्रिया है। उनकी आत्मकथाएँ केवल सामाजिक उत्पीड़न, आर्थिक अभाव और शैक्षिक संघर्ष का विवरण नहीं देतीं, बल्कि यह भी दिखाती हैं कि व्यक्ति अपने अनुभवों और अध्ययन के आधार पर किस प्रकार एक नई दृष्टि विकसित करता है। मणिकर्णिका में लेखक के बौद्धिक विकास और वैचारिक निर्माण का विस्तृत चित्रण मिलता है। यह विकास केवल व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं है, बल्कि उस सामाजिक चेतना का भी संकेतक है जो परंपरागत मान्यताओं का पुनर्मूल्यांकन करती है और तर्क तथा मानवता को महत्व देती है। तुलसीराम के जीवन में उच्च शिक्षा, व्यापक अध्ययन और विभिन्न विचारधाराओं के संपर्क का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। विशेष रूप से राहुल सांकृत्यायन और गौतम बुद्ध के चिंतन ने उनके विचार-जगत को गहराई से प्रभावित किया। लेखक स्वयं इस परिवर्तन का उल्लेख करते हुए लिखते हैं-''मैं राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक 'बौद्ध धर्म' तथा प्रथम सदी के महान बौद्ध कवि अश्वघोष की कालजयी रचना 'बुद्धचरित' को बार-बार पढ़ता; विशेष रूप से बुद्ध के प्रथम उपदेश को मैं रट सा गया। उनके अनात्मवाद को हर क्षण दोहराता। अंततोगत्वा राहुल के साथ-साथ बुद्ध ने मेरी नास्तिकता पर अमिट ठप्पा लगा दिया। मेरे मस्तिष्क तथा हृदय के सारे दरवाजे ईश्वर तथा अंधविश्वासों के लिए हमेशा के लिए बंद हो गये। मैं पूर्णरूपेण नास्तिक हो गया। नास्तिकता ने मुझे हद से ज्यादा मानवीय बना दिया। मैं विशुद्ध रूप से मानवता का पुजारी बन गया। जो लोग मानवता की बात करते हुए ईश्वरीय

अंधविश्वासों की वकालत करते हैं, मैं उन्हें सबसे बड़ा पाखंडी और ढोंगी समझने लगा।''

यह उद्धरण लेखक की वैचारिक यात्रा को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यहाँ नास्तिकता का अर्थ केवल ईश्वर के अस्तित्व का निषेध नहीं है। लेखक इसे एक ऐसी दृष्टि के रूप में ग्रहण करता है जो मनुष्य और उसकी समस्याओं को केंद्र में रखती है। उसके लिए सामाजिक जीवन का मूल्यांकन धार्मिक मान्यताओं के आधार पर नहीं, बल्कि मानवीय दृष्टि से किया जाना चाहिए। इस प्रकार नास्तिकता उसके लिए एक बौद्धिक और नैतिक दृष्टिकोण का रूप ग्रहण कर लेती है। इस प्रसंग का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि लेखक अंधविश्वास और तर्क के बीच स्पष्ट अंतर स्थापित करता है। बचपन और किशोरावस्था में जिन लोकविश्वासों और धार्मिक धारणाओं का प्रभाव उसके जीवन पर दिखाई देता है, वही व्यक्ति आगे चलकर अध्ययन और चिंतन के आधार पर उनकी आलोचनात्मक समीक्षा करने लगता है। यह परिवर्तन किसी बाहरी दबाव का परिणाम नहीं है, बल्कि ज्ञान और अनुभव से उत्पन्न वैचारिक परिपक्वता का परिणाम है।

तुलसीराम के चिंतन में मानवता का प्रश्न विशेष महत्व रखता है। उनके अनुसार मनुष्य का मूल्य उसकी जाति, धर्म या सामाजिक स्थिति से निर्धारित नहीं होना चाहिए। यह दृष्टि उनके जीवनानुभवों से भी निर्मित होती है। जातिगत अपमान, सामाजिक विषमता और बहिष्कार का अनुभव करने वाला व्यक्ति जब मानवता को सर्वोच्च मूल्य के रूप में स्वीकार करता है, तो उसका यह निर्णय केवल दार्शनिक निष्कर्ष नहीं रह जाता, बल्कि सामाजिक अनुभव से जुड़ा हुआ निष्कर्ष बन जाता है। मणिकर्णिका का यह पक्ष आधुनिक भारतीय समाज में विकसित हो रही वैज्ञानिक चेतना और तर्कशील दृष्टि को भी प्रतिबिंबित करता है। लेखक यह स्वीकार करता है कि अध्ययन और विचार ने उसके भीतर प्रश्न करने की क्षमता विकसित की। यही क्षमता उसे स्थापित मान्यताओं को चुनौती देने और नए निष्कर्षों तक पहुँचने में सहायता करती है। इस प्रकार शिक्षा और वैचारिक विकास का संबंध यहाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

8. सामाजिक न्याय और राजनीतिक चेतना

तुलसीराम की आत्मकथाओं में सामाजिक यथार्थ का एक महत्वपूर्ण पक्ष सामाजिक न्याय और राजनीतिक चेतना का विकास है। उनके जीवन का अनुभव केवल व्यक्तिगत संघर्षों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह व्यापक सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों से भी जुड़ता है। उच्च शिक्षा, विभिन्न वैचारिक धाराओं के संपर्क तथा सामाजिक जीवन के अनुभवों ने उनके भीतर ऐसी दृष्टि विकसित की, जिसके माध्यम से वे समाज में व्याप्त असमानताओं और सत्ता-संबंधों को समझने का प्रयास करते हैं। मणिकर्णिका में यह चेतना विशेष रूप से विकसित रूप में दिखाई देती है। तुलसीराम के अनुभव यह संकेत करते हैं कि सामाजिक न्याय का प्रश्न केवल आर्थिक संसाधनों के वितरण का प्रश्न नहीं है, बल्कि वह सम्मान, प्रतिनिधित्व, अभिव्यक्ति और पहचान से भी जुड़ा हुआ है। समाज में विभिन्न समुदायों के अनुभवों को समान महत्व नहीं दिया जाता। कुछ समूहों की आवाज़ को वैधता प्राप्त होती है, जबकि अन्य समूहों की बातों को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। इस संदर्भ में लेखक लिखते हैं–''कम्युनिस्ट पार्टी की निगाह में डॉ. आंबेडकर का कोई महत्व नहीं था। युवा मोर्चा में छपने वाली सामग्री के परिणामस्वरूप मुझे यह प्रतीत हुआ कि जब कोई उच्च जाति का व्यक्ति दलितों पर किये जाने वाले अत्याचार पर लिखता या बोलता है, तो वह समाज सुधारक कहलाता है। किंतु जब वही बात कोई दलित लिखता या बोलता है, तो उसे जातिवादी मान लिया जाता है।''

यह उद्धरण सामाजिक और राजनीतिक विमर्श में प्रतिनिधित्व के प्रश्न को अत्यंत स्पष्ट रूप से सामने लाता है। लेखक यहाँ किसी एक राजनीतिक संगठन की आलोचना भर नहीं कर रहा है, बल्कि उस व्यापक मानसिकता की ओर संकेत कर रहा है जिसमें सामाजिक रूप से वंचित समुदायों की आवाज़ को बराबरी का स्थान नहीं दिया जाता। जब किसी समुदाय के बाहर का व्यक्ति उसके पक्ष में बोलता है, तो उसे निष्पक्ष और प्रगतिशील माना जाता है; किंतु जब उसी समुदाय का व्यक्ति अपने अनुभवों को व्यक्त करता है, तो उसकी वैधता पर प्रश्नचिह्न लगाया जाता है। यह स्थिति सामाजिक असमानता के एक सूक्ष्म रूप को उजागर करती है। तुलसीराम का यह अनुभव सामाजिक न्याय की अवधारणा को अधिक व्यापक रूप में समझने की आवश्यकता को रेखांकित करता है। सामाजिक न्याय केवल कानून द्वारा प्रदत्त अधिकारों तक सीमित नहीं है। उसका संबंध इस बात से भी है कि समाज किन लोगों की बात सुनता है, किन अनुभवों को महत्व देता है और किन समुदायों को अपनी बात कहने का अवसर प्रदान करता है। यदि किसी समुदाय को अपनी पीड़ा और अनुभव व्यक्त करने के लिए भी संघर्ष करना पड़े, तो यह सामाजिक असमानता का ही एक रूप है।

इस प्रकार मणिकर्णिका में सामाजिक न्याय और

राजनीतिक चेतना का चित्रण सामाजिक यथार्थ के एक महत्वपूर्ण आयाम को सामने लाता है। यह स्पष्ट करता है कि तुलसीराम की आत्मकथाएँ केवल व्यक्तिगत संघर्षों का वृत्तांत नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक संरचना, प्रतिनिधित्व और न्याय के प्रश्नों पर गंभीर विचार भी प्रस्तुत करती हैं। यही विशेषता उनकी आत्मकथाओं को व्यापक सामाजिक संदर्भ प्रदान करती है और उन्हें हिंदी आत्मकथा साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियों में स्थान दिलाती है।

9. निष्कर्ष

तुलसीराम की आत्मकथाएँ मुर्दहिया और मणिकर्णिका हिंदी आत्मकथा साहित्य की ऐसी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं जिनमें व्यक्तिगत जीवनानुभवों के माध्यम से भारतीय समाज के बहुआयामी सामाजिक यथार्थ का सशक्त चित्रण हुआ है। इन आत्मकथाओं का महत्व केवल इस बात में नहीं है कि वे लेखक के जीवन–संघर्ष का विवरण प्रस्तुत करती हैं, बल्कि इस बात में भी है कि वे एक ऐसे सामाजिक संसार को उद्घाटित करती हैं जो लंबे समय तक साहित्य और इतिहास की मुख्यधारा में अपेक्षित स्थान नहीं प्राप्त कर सका। तुलसीराम ने अपने अनुभवों को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है कि वे व्यापक सामाजिक समुदाय के अनुभवों का प्रतिनिधित्व करने लगते हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उनकी आत्मकथाओं में जातिगत भेदभाव और सामाजिक विषमता का चित्रण अत्यंत प्रामाणिक रूप में उपस्थित है। लेखक ने यह दिखाया है कि जाति केवल सामाजिक पहचान का प्रश्न नहीं थी, बल्कि वह व्यक्ति के सम्मान, अवसरों और सामाजिक संबंधों को प्रभावित करने वाली संरचना भी थी। जातिगत अपमान और सामाजिक बहिष्कार के अनुभवों के माध्यम से उन्होंने ग्रामीण समाज की उस वास्तविकता को सामने रखा है जो सामाजिक समानता के आदर्शों से मेल नहीं खाती। आर्थिक अभावों और सामाजिक बाधाओं के बावजूद शिक्षा के प्रति लेखक की प्रतिबद्धता यह सिद्ध करती है कि ज्ञान और चेतना व्यक्ति के जीवन की दिशा बदलने की क्षमता रखते हैं। उनके अनुभव यह भी संकेत करते हैं कि शिक्षा केवल व्यक्तिगत उन्नति का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक गतिशीलता और सामूहिक परिवर्तन का आधार भी है।

तुलसीराम की आत्मकथाओं का एक महत्वपूर्ण योगदान ग्रामीण लोकसंस्कृति और सांस्कारिक जीवन के चित्रण में भी निहित है। कोहबर कला, लोकपरंपराएँ, विवाह–संस्कार और सामुदायिक जीवन के विविध प्रसंग यह प्रमाणित करते हैं कि सामाजिक रूप से वंचित समझे जाने वाले समुदायों का सांस्कृतिक जीवन भी अत्यंत समृद्ध था। लेखक ने इन सांस्कृतिक रूपों को दर्ज करके उन्हें साहित्यिक और ऐतिहासिक महत्व प्रदान किया है। लोकविश्वासों और ग्रामीण मनोविज्ञान का चित्रण उनकी आत्मकथाओं का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष है। जोगी बाबा जैसे प्रसंग यह स्पष्ट करते हैं कि ग्रामीण समाज का मानसिक संसार केवल तर्क और अनुभव से नहीं, बल्कि लोकआस्थाओं और परंपरागत विश्वासों से भी निर्मित होता है। मणिकर्णिका में चित्रित वैचारिक परिवर्तन लेखक के व्यक्तित्व विकास का महत्वपूर्ण चरण है। अध्ययन, चिंतन और व्यापक वैचारिक संपर्कों के परिणामस्वरूप उनके भीतर तर्कशीलता, मानवता और सामाजिक न्याय के प्रति गहरी प्रतिबद्धता विकसित होती है। यह परिवर्तन केवल व्यक्तिगत स्तर का नहीं है, बल्कि आधुनिक भारतीय समाज में विकसित हो रही नई चेतना का भी प्रतिनिधित्व करता है।

समग्रत: कहा जा सकता है कि मुर्दहिया और मणिकर्णिका भारतीय समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक जीवन के महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। इन आत्मकथाओं में वर्णित अनुभव केवल एक व्यक्ति की जीवनकथा नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय समाज के एक व्यापक ऐतिहासिक और सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करते हैं। तुलसीराम ने अपने जीवनानुभवों के माध्यम से सामाजिक विषमता, संघर्ष, चेतना, संस्कृति और परिवर्तन की प्रक्रियाओं को जिस प्रामाणिकता और संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है, वह हिंदी आत्मकथा साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस दृष्टि से उनकी आत्मकथाएँ सामाजिक यथार्थ के अध्ययन के लिए अत्यंत मूल्यवान स्रोत सिद्ध होती हैं।

संदर्भ

1. तुलसीराम, मुर्दहिया, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2024, पृष्ठ 156
2. वही, पृ. 86
3. वही, पृ. 105
4. वही, पृ. 138
5. वही, पृ. 86
6. तुलसीराम, मणिकर्णिका, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2025, पृ. 63
7. वही, पृ. 170–171

भभूल्या : विमुक्त समुदाय का जीवन-संघर्ष

- डॉ. बी.एल. आर्य

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, मा.ला.व.रा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भीलवाड़ा-311001 (राजस्थान)

शोध-सारांश -

रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'भभूल्या' विमुक्त एवं घुमंतू समुदाय के जीवन-संघर्ष, सामाजिक उपेक्षा, असुरक्षा तथा मानवीय संवेदनाओं का प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत करती है। यह अध्ययन कहानी में चित्रित विमुक्त समुदाय के सामाजिक यथार्थ, उनके जीवन की विषम परिस्थितियों, पुलिस-व्यवस्था के व्यवहार तथा मानवीय संबंधों की पड़ताल करता है। कहानी का प्रमुख पात्र धियानाराम विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी जिजीविषा, सहनशीलता और संवेदनशीलता के माध्यम से पाठकों को प्रभावित करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 'भभूल्या' केवल एक कहानी नहीं, बल्कि विमुक्त समुदाय के जीवन की जटिलताओं, सामाजिक पूर्वाग्रहों और सम्मानपूर्ण जीवन की आकांक्षा का महत्त्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज है।

बीज शब्द : भभूल्या, रत्नकुमार सांभरिया, विमुक्त समुदाय, घुमंतू समाज, जीवन-संघर्ष, सामाजिक बहिष्करण, मानवीय संवेदना, सामाजिक न्याय, हिंदी कहानी।

मूल लेख

बीसवीं शताब्दी पूरे विश्व में वैचारिक उथलपुथल और तीव्र परिवर्तनों के लिए जानी जाती है। इस शताब्दी में भारतवर्ष में भी आधुनिकता का उन्मेष हुआ तथा पश्चिम के प्रभाव से यहाँ भी नए-नए विचार समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाते रहे। इस दृष्टि से बीसवीं शताब्दी को वैचारिक आग्रहों के विस्फोट की शताब्दी भी कहा जा सकता है। शरणकुमार लिंबाले लिखते हैं कि- ''भारतवर्ष में बीसवीं सदी को स्वतंत्रता की सदी के रूप में पहचाना जा सकता है। इस सदी का पूर्वार्द्ध राजनीतिक स्वतंत्रता से प्रेरित संघर्ष था तो उत्तरार्द्ध सामाजिक स्वतंत्रता हेतु किए गए अनेक आंदोलनों से व्याप्त था। बीसवीं सदी राजनीतिक और सामाजिक स्वतंत्रता आंदोलन की गोद में फली-फूली।'' आंबेडकरवादी चेतना ने भारतीय समाज के उपेक्षित, वंचित और बहिष्कृत समुदायों के प्रश्नों को नई वैचारिक दृष्टि प्रदान की है। साहित्य में भी ऐसे समुदायों के जीवन-संघर्ष, पीड़ा और सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति मिली है। किंतु विमुक्त एवं घुमंतू समुदायों का जीवन अभी भी अपेक्षाकृत कम चर्चित रहा है। यह ऐसा समुदाय है, जो अनेक बुनियादी अधिकारों से वंचित रहा है। ये वे लोग हैं, जो धरती बिछाते और आकाश ओढ़ते हैं। शरणकुमार लिंबाले के शब्दों में-''खानाबदोश जातियों पर तो अस्पृश्यों से भी भयानक अत्याचार हुए हैं। अस्पृश्यों का गाँव के बाहर ही क्यों न हो, घर है, अलग ही सही पनघट है, श्मशान है, लेकिन खानाबदोशों की दशा इससे भयावह और दहलाने वाली है। खानाबदोश जातियों को जीने के लिए निरंतर घूमना पड़ता है, उन्हें एक स्थान पर बसेरा करने नहीं दिया जाता, उनको चोर-अपराधी के रूप में संदेह से देखा जाता है। इन जातियों को गुजारा करने के लिए भीख माँगनी पड़ती है या चोरी करनी पड़ती है। जनत: व्यक्ति को अपराधी बनाने वाली यह व्यवस्था स्वयं अपराधी है।'' इसे सच्चे अर्थों में विमुक्त समुदाय का जीवन कहा जा सकता है, जहाँ शिक्षा का कोई स्तर नहीं है। अत: इस समाज के दर्द से भी साहित्यकारों को सरोकार रखना चाहिए। ऐसी ही संवेदनशील दृष्टि से लिखी गई कृति 'भभूल्या' विमुक्त समुदाय के जीवन-संघर्ष, अभाव, सामाजिक उपेक्षा और अस्तित्व की जद्दोजहद को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। यह कृति केवल एक समुदाय की कथा नहीं है, बल्कि उन परिस्थितियों का भी दस्तावेज है, जिनमें मनुष्य सम्मानपूर्ण जीवन के लिए निरंतर संघर्ष करता है।

पत्रिका हंस के अक्टूबर, 2016 के अंक में प्रकाशित रत्नकुमार सांभरिया की 'भभूल्या' कहानी इसी परिप्रेक्ष्य में एक सार्थक कृति कही जा सकती है, जो विमुक्त एवं घुमंतू समुदाय के जीवन को केंद्र में रखकर लिखी गई है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने इस समुदाय के सामाजिक यथार्थ को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। स्वयं रचनाकार सांभरिया के शब्दों में–''राजस्थान में ही करीब दो लाख ऐसे घुमंतू, खानाबदोश लोग हैं, जिनकी अपनी जिंदगी में अगले पल का कोई ठौर नहीं। ये वे लोग हैं जो रोज अपने ही पसीने से नहा लेते हैं और कंधे पर अपना आशियाना लेकर यहाँ से वहाँ चलते रहते हैं।'' इन लोगों को प्राय: संदेह की दृष्टि से देखा जाता है और अनेक बार उन्हें चोर–अपराधी के रूप में चिन्हित कर दिया जाता है। भभूल्या कहानी में हेक्कार्टेबल कहता है– ''ये झुग्गी–झोपड़ी में रहने वाले लोग हैं न, खेल–तमाशे दिखाते, सामान बेचते, इधर–उधर घूमते, सूने घरों की थाह ले आते हैं। या तो चोर सरगना को इसकी इत्तला दे देते हैं या मौका देख खुद सेंध लगा लेते हैं।'' आज़ादी के बाद भी भारतीय समाज में सामाजिक बहिष्करण और शोषण की अनेक संरचनाएँ बनी रहीं। परिणामस्वरूप विमुक्त एवं घुमंतू समुदायों का जीवन सम्मान, सुरक्षा और समान अवसरों से वंचित बना रहा। रत्नकुमार सांभरिया आधुनिक समाज में विद्यमान इसी सामाजिक यथार्थ को पहचानने में कहीं चूक नहीं करते।''यार आज पंद्रह अगस्त है, व्हिस्की का स्टॉक तो है घर पर, मीट–मांस की तमाम दुकानें बंद हैं, बाज़ार में।'' पुलिस–व्यवस्था का यह वार्तालाप स्वतंत्र भारत की उन विडंबनाओं को उजागर करता है, जहाँ राष्ट्रीय पर्वों की औपचारिकता और सामाजिक वास्तविकता के बीच गहरा अंतर दिखाई देता है।

सांभरिया ने 'भभूल्या' कहानी में विमुक्त समुदाय के धियानाराम के जीवन–यथार्थ को सजीव वाणी दी है। धियानाराम अपने एक रेबारी दोस्त मेवा के निश्छल प्रेम की निशानी बकरे को बचाने के लिए पुलिस के आतंक से बराबर जूझता रहता है। वह बकरा केवल एक पशु नहीं, बल्कि उसके एकाकी जीवन का सहारा भी है। स्वयं कथाकार सांभरिया के शब्दों में, ''धियानाराम अपने उस रेबारी दोस्त की इस निशानी को टाबर की तरह प्यार–दुलार से पालने–पोसने लगा था। दूध खरीद कर लाता और उसे बोतल से पिलाता। दूध की चूंट या कीकर की लौंग हथेली पर रखकर खिलाता। बच्चा बड़ा होता गया। वह उसके मोह बँधता गया। अकेला जीव हो, निपट सनाथा हो, एक–दूसरे की साँसें संबल बन जाया करती हैं।'' इस प्रकार कहानी का आरंभ ही मानवीय संवेदना के समस्त स्तरों को स्पर्श करता हुआ दिखाई देता है। इसके विपरीत पुलिस की दृष्टि में वही बकरा तस्करी का एक संभावित माध्यम बन जाता है। यही इस कथा की विडंबना है कि समाज में व्याप्त पूर्वाग्रह और सामाजिक दूरी मनुष्यों के प्रति अविश्वास को जन्म देती है, जबकि उन्हीं लोगों के श्रम और संसाधनों का उपयोग करने में कोई संकोच नहीं किया जाता। धियानाराम ठीक ही कहता है–''ये ऊँची जात का लोग हैं न, छोटी जात की हांडी पको मीट खा लेगा, पर उनका मटका को पानी ना पियेगा, वाह री जात, वाह री छुआछूत, बड़े रहने को स्वांग है सब।''

विमुक्त समुदाय का व्यक्ति चाहे कितनी ही कठिन परिस्थितियों में जीवन व्यतीत कर रहा हो, उसके भीतर जीवन के प्रति गहरी जिजीविषा विद्यमान रहती है। वह अपनी प्रत्येक साँस को संघर्ष और अनुभव के साथ जीता है। उसकी प्रकृति पीपल के बीज की तरह होती है, जो कठोर से कठोर परिस्थितियों में भी अपना अस्तित्व बना लेता है। धियानाराम भी ऐसा ही पात्र है, जिसमें भरपूर जीवटता, जुझारूपन और जीवन–संघर्ष की शक्ति दिखाई देती है। यही कारण है कि वह अपने बकरे की जान बचाने के लिए स्वयं की उंगली का पोर काटकर हेडकांस्टेबल के मुँह में डाल देता है– ''धियानाराम ने झटाककर अपनी उंगली काटी और लहू टपकता पोर नीचे पड़े हेडकांस्टेबल के मुँह में डाल दिया था– ले खा।'' यह प्रसंग पाठक को और अधिक गहराई के साथ व्यवस्था की अमानवीयता का अनुभव कराता है। कहानी का परिवेश स्वतंत्र भारत की उन विडंबनाओं को सामने लाता है, जहाँ एक ओर स्वतंत्रता–दिवस का उत्सव मनाया जाता है, वहीं दूसरी ओर वंचित समुदायों के साथ अन्याय और भेदभाव की स्थितियाँ बनी रहती हैं। प्रशासन का दोहरा आचरण उसके घोषित आदर्शों और वास्तविक व्यवहार के बीच के अंतर को उजागर करता है। कथाकार संकेतों के माध्यम से अपनी बात पाठक तक प्रभावी ढंग से पहुँचाने में सफल दिखाई देता है।

धियानाराम पशु–बलि की अपेक्षा अपनी उंगली की शहादत देकर अपने नैतिक साहस और मानवीय संवेदना का

परिचय देता है। यद्यपि कहानी का अंत पाठक को भीतर तक विचलित करता है, फिर भी वह अनेक गंभीर प्रश्न छोड़ जाता है। बकौल अभिनव अरुण- ''आखिर सब कुछ सहने और सब दूसरों के लिए न्योछावर कर देने वाला स्वयं अपनी ही उंगली क्यों काटे? हम कब अन्याय करने वाली उंगली को काटने का साहस कर पाएँगे।'' यदि कथाकार ने इसी प्रतिरोध को और अधिक व्यापक सामाजिक संदर्भ में विकसित किया होता तो कथा का प्रभाव और भी तीव्र हो सकता था। फिर भी भभूल्या विमुक्त समुदाय के जीवन-संघर्ष, सामाजिक पूर्वाग्रहों, मानवीय संवेदनाओं और व्यवस्था की विसंगतियों को प्रभावशाली ढंग से सामने लाने वाली महत्त्वपूर्ण कहानी सिद्ध होती है।

कहानी के अंत में धियानाराम की सहनशीलता, पशु-प्रेम और मानवीय संवेदना पाठक के सामने और अधिक स्पष्ट होकर उभरती है। वह अपने प्रिय बकरे को बचाने के लिए स्वयं कष्ट सहने को तैयार हो जाता है। इस प्रसंग के माध्यम से कथाकार यह संकेत देता है कि विपन्न परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करने वाले लोगों के भीतर भी संवेदना, प्रेम और त्याग की गहरी मानवीय शक्ति विद्यमान रहती है। शिल्प की दृष्टि से भी यह कहानी उल्लेखनीय है। लोकभाषा का प्रभावपूर्ण प्रयोग इसकी एक प्रमुख विशेषता है। गुढ़डांबा, टावर, भभूल्या, मेह आदि लोकप्रचलित शब्द कथा को स्थानीय जीवन-संदर्भों से जोड़ते हैं और उसे स्वाभाविकता प्रदान करते हैं। कथाकार ने प्रतीकात्मक शैली का भी सफल प्रयोग किया है। भभूल्या केवल एक पात्र नहीं, बल्कि उस भय, असुरक्षा और सामाजिक पूर्वाग्रह का भी प्रतीक बन जाता है जिसके बीच विमुक्त समुदाय अपना जीवन व्यतीत करता है। कथाकार के शब्दों में- ''अन्यायी जिधर गुजरता तबाही किए चलता।''

प्रस्तुत कहानी में अंग्रेज़ी शब्दावली का भी यथास्थान प्रयोग किया गया है, किंतु वह कहीं भी कथा की प्रवाहशीलता को बाधित नहीं करती। इसके विपरीत वह कथा-परिवेश को अधिक प्रभावशाली बनाने का कार्य करती है। भाषा, कथानक और चरित्र-चित्रण के स्तर पर कहानी पाठक को अपने साथ बाँधे रखती है। संक्षेप में, भभूल्या केवल पुलिस-व्यवस्था की कठोरता अथवा भय का आख्यान नहीं है, बल्कि विमुक्त एवं घुमंतू समुदाय के जीवन-संघर्ष, उनकी जिजीविषा, मानवीय संवेदना और सामाजिक यथार्थ का सशक्त चित्रण भी है। हंस के संपादक संजय सहाय की टिप्पणी इस कहानी के महत्व को रेखांकित करती है- ''भभूल्या का विषय एकदम अछूता और स्तब्ध कर देने वाला है। यह कथानक विमुक्त समुदाय के लोगों के दु:ख-दर्द और उनकी पीड़ा से सरोकार रखता है तथा अपनी पक्षधरता स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है।'' धियानाराम का चरित्र शोषण, दमन और सामाजिक पूर्वाग्रहों के विरुद्ध मानवीय प्रतिरोध का स्वर प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि भभूल्या विमुक्त समुदाय के जीवन-संघर्ष को अभिव्यक्त करने वाली एक महत्त्वपूर्ण कहानी के रूप में स्थापित होती है।

निष्कर्ष

'भभूल्या' विमुक्त एवं घुमंतू समुदाय के जीवन-संघर्ष को केंद्र में रखकर लिखी गई एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। कहानी में सामाजिक उपेक्षा, प्रशासनिक कठोरता, पूर्वाग्रह तथा मानवीय संवेदनाओं का यथार्थ चित्रण मिलता है। धियानाराम का चरित्र प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवन के प्रति आस्था, प्रेम और संघर्षशीलता का परिचय देता है। रत्नकुमार सांभरिया ने लोकभाषा, प्रतीकात्मकता और यथार्थवादी शिल्प के माध्यम से विमुक्त समुदाय के जीवन को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। इस दृष्टि से 'भभूल्या' केवल साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है, जो पाठक को मानव गरिमा, समानता और सामाजिक न्याय के प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करने के लिए प्रेरित करती है।

संदर्भ

1. शरणकुमार लिंबाले (संपा.) : दलित साहित्य : वेदना और विद्रोह, दिल्ली, 2010, पृ. 19
2. पूर्वोक्त, पृ. 21
3. दैनिक भास्कर (जयपुर), 24 जनवरी 2017
4. रत्नकुमार सांभरिया : भभूल्या, हंस, दिल्ली, अक्टूबर 2016, पृ. 19
5. पूर्वोक्त
6. पूर्वोक्त
7. पूर्वोक्त, पृ. 21
8. पूर्वोक्त, पृ. 22
9. रत्नकुमार सांभरिया : भभूल्या, हंस, दिल्ली, अक्टूबर 2016, पृ. 7
10. वही, पृ. 16
11. वही, पृ. 95

'वामन फिर आ रहा है' : मिथकीय प्रतीकों का आंबेडकरवादी पुनर्पाठ

– देवचंद्र भारती 'प्रखर'

सारांश –

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में आंबेडकरवादी चेतना ने मिथकीय प्रतीकों, सामाजिक यथार्थ, शिक्षा-विमर्श और प्रतिरोध की वैचारिक भूमि को नए रूप में अभिव्यक्त किया है। एल.एन. सुधाकर का कविता-संग्रह श्वामन फिर आ रहा हैश इसी चेतना का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इस संग्रह में कवि ने ''वामन'', ''बलि'', ''शम्बूक'', ''एकलव्य'', ''राम'', ''रावण'' और ''द्रौपदी'' जैसे मिथकीय प्रतीकों का पुनर्पाठ करते हुए उन्हें समकालीन सामाजिक संदर्भों से जोड़ा है। कवि मिथकों को धार्मिक आस्था के क्षेत्र से बाहर निकालकर सामाजिक सत्ता-संरचना, मनुवादी वर्चस्व, स्त्री-शोषण तथा शिक्षा-वंचना के संदर्भ में पुनर्परिभाषित करते हैं। उनकी कविता संगठन, स्वाभिमान, संघर्ष, वैज्ञानिक दृष्टि और सामाजिक समता को बहुजन मुक्ति का आधार घोषित करती है। प्रस्तुत शोधपत्र में इस कविता-संग्रह की वैचारिक संरचना, मिथकीय पुनर्पाठ, सामाजिक प्रतिरोध तथा आंबेडकरवादी चेतना का विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द : आंबेडकरवादी चेतना, मिथकीय प्रतीक, वामन, बलि, शम्बूक, एकलव्य, द्रौपदी, मनुवाद, सामाजिक प्रतिरोध, समकालीन हिंदी कविता।

1. प्रस्तावना

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में आंबेडकरवादी चेतना ने साहित्य को केवल पीड़ा और शोषण के वर्णन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे मनुवादी सत्ता-संरचना, सांस्कृतिक वर्चस्व और सामाजिक असमानता की वैचारिक समीक्षा का माध्यम बनाया है। विशेष रूप से मिथकीय प्रतीकों और पौराणिक आख्यानों का पुनर्पाठ आंबेडकरवादी कविता की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप में सामने आया है। इस पुनर्पाठ में मिथकों को धार्मिक आस्था की दृष्टि से नहीं, बल्कि सामाजिक सत्ता, वर्णव्यवस्था और ऐतिहासिक दमन की संरचनाओं के रूप में देखा जाता है। इसी कारण पौराणिक पात्र आंबेडकरवादी कविता में नए सामाजिक और वैचारिक अर्थ ग्रहण करते हैं। एल.एन. सुधाकर का कविता-संग्रह श्वामन फिर आ रहा हैश इसी वैचारिक दिशा का प्रतिनिधि काव्य-संग्रह है। इस संग्रह की कविताएँ मिथकीय प्रतीकों के माध्यम से मनुवादी सत्ता-संरचना, शिक्षा-वंचना, स्त्री-शोषण और सामाजिक विखंडन की तीखी आलोचना प्रस्तुत करती हैं। कवि सुधाकर मिथकों को स्थिर धार्मिक सत्य के रूप में स्वीकार नहीं करते, बल्कि उनके भीतर सक्रिय सत्ता-संबंधों और वर्णाधारित वर्चस्व को उद्घाटित करते हैं। यह संग्रह मिथकीय पुनर्पाठ के माध्यम से सामाजिक असमानता और सांस्कृतिक प्रभुत्व की वैचारिक समीक्षा प्रस्तुत करता है।

2. मिथकीय प्रतीकों का आंबेडकरवादी पुनर्पाठ

एल.एन. सुधाकर की कविता मिथकीय प्रतीकों को सामाजिक यथार्थ और ऐतिहासिक दमन के संदर्भ में पुनर्परिभाषित करती है। कवि पौराणिक आख्यानों को धार्मिक आस्था की निष्क्रिय स्वीकृति के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उनके भीतर सक्रिय सत्ता-संबंधों और वर्णाधारित वर्चस्व को उद्घाटित करते हैं। इसी कारण उनकी कविता में मिथक केवल सांस्कृतिक स्मृति नहीं रह जाते, बल्कि सामाजिक संघर्ष और वैचारिक प्रतिरोध के उपकरण बन जाते हैं। मिथकीय पात्र कविता में सामाजिक प्रतिरोध और वैचारिक पुनर्व्याख्या के प्रतीक बनकर उभरते हैं। इसी संदर्भ में 'वामन' का मिथक कविता में विशेष महत्व प्राप्त करता है। कवि 'वामन' को ब्राह्मणवादी प्रभुत्व, छल और सांस्कृतिक नियंत्रण के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जबकि 'बलि' शोषित समाज की ऐतिहासिक चेतना और दमन का प्रतिनिधि प्रतीक बनकर सामने आता है। कवि सुधाकर अपनी कविता 'वामन फिर आ रहा है' में लिखते हैं-

''साहस-संगठन-स्वाभिमान-स्वविवेक ही
शोषितों के काम आएगा
अब नवयुग उभरा है
बलि!
मेरा मतलब
तेरा कुनबा अभी तक नहीं सुधरा है
बिखरा है
जातियों और उपजातियों में
इसी का लाभ वामन उठा रहा है
बलि सावधान!
वामन फिर आ रहा है।'' 1

इन पंक्तियों में कवि वंचित-वर्ग की विखंडित सामाजिक स्थिति को उसकी सबसे बड़ी कमजोरी के रूप में प्रस्तुत करते हैं। श्जातियों और उपजातियों मेंश बिखराव केवल सामाजिक विभाजन नहीं, बल्कि राजनीतिक और वैचारिक दुर्बलता का संकेत है। कवि सुधाकर स्पष्ट करते हैं कि शोषणकारी शक्तियाँ इसी विखंडन का लाभ उठाती हैं। यहाँ श्वामनश सामाजिक प्रभुत्व की पुनरावृत्ति का प्रतीक बन जाता है। 'वामन फिर आ रहा है' कथन केवल पौराणिक संकेत नहीं, बल्कि समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों की चेतावनी है।

''साहस-संगठन-स्वाभिमान-स्वविवेक'' जैसे शब्द कविता को सीधे आंबेडकरवादी वैचारिक भूमि से जोड़ते हैं। विशेष रूप से 'स्वविवेक' शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह अंधानुकरण के स्थान पर वैज्ञानिक दृष्टि और आलोचनात्मक चेतना की स्थापना करता है। कवि सुधाकर भावनात्मक सहानुभूति की अपेक्षा वैचारिक जागरूकता और संगठित प्रतिरोध को अधिक महत्व देते हैं। यही कारण है कि उनकी कविता केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का वैचारिक दस्तावेज बन जाती है।

3. शिक्षा-वंचना और मनुवादी सत्ता-संरचना

एल.एन. सुधाकर की कविता शिक्षा के प्रश्न को भी सामाजिक न्याय के केंद्र में स्थापित करती है। कवि स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करता है कि शिक्षा से वंचित करना मनुवादी सत्ता-संरचना की ऐतिहासिक रणनीति रही है। वह लिखता है-

''दलितों-पिछड़ों को शिक्षा से ऐसे ही वंचित रखना है।
मनुवादी यह नीति पुरानी, तुम को स्वयं परखना है।
'शम्बूकों' और 'एकलव्यों' को, भारत में न्याय दिलाने को।
मनुवाद का पर्दाफाश करो, सामाजिक-समता पाने को।।''2

यहाँ ''शम्बूक'' और ''एकलव्य'' केवल पौराणिक पात्र नहीं हैं। वे ज्ञान से वंचित किए गए समुदायों के ऐतिहासिक प्रतीक बन जाते हैं। कवि इन मिथकों का पुनर्पाठ करते हुए यह स्थापित करता है कि शिक्षा पर नियंत्रण सदैव सत्ता का सबसे प्रभावी माध्यम रहा है। ''मनुवादी यह नीति पुरानी'' कथन शिक्षा-वंचना को ऐतिहासिक सामाजिक षड्यंत्र के रूप में उद्घाटित करता है। कविता यहाँ सामाजिक न्याय और शिक्षा के प्रश्न को एक-दूसरे से अविभाज्य रूप में प्रस्तुत करती है।

4. मिथकीय आख्यानों की ऐतिहासिकता और वैज्ञानिक दृष्टि

एल.एन. सुधाकर की कविता का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि वह धार्मिक आख्यानों की ऐतिहासिकता पर प्रश्न उठाती है। कवि मिथकीय कथाओं को अंधस्वीकृति के स्थान पर तर्क और इतिहास की कसौटी पर परखने का आग्रह करता है। वह लिखता है-

''कल्पना लोक का काव्य, लिखा सुन्दर मनचीता।
हुआ न कोई युद्ध, नहीं कोई हारा-जीता।।
कृषक जोतता खेत, खेतू को कहते सीता।
वाल्मीकि खा गई, खेत रीता का रीता।।
हुआ न कोई राम और नहीं रावण बंका।
रही धरा पर कभी नहीं सोने की लंका।।
लंका का इतिहास बजाकर कहता डंका।
करो सत्य की खोज, मिटा लो मन की शंका।।''3

इन पंक्तियों में कवि रामायण को ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में स्वीकार करने से इंकार करता है। ''कल्पना लोक का काव्य'' कहकर वह मिथकीय आख्यानों की सांस्कृतिक संरचना की ओर संकेत करता है। ''कृषक जोतता खेत, खेतू को कहते सीता'' पंक्ति मिथकीय पात्रों को श्रम-संस्कृति और लोकजीवन से जोड़ती है। यहाँ ''सीता'' पौराणिक स्त्री-पात्र के स्थान पर कृषि और भूमि की सांस्कृतिक प्रतीक बन जाती है। ''करो सत्य की खोज, मिटा लो मन की शंका'' कथन कविता के वैज्ञानिक और तर्कवादी आधार को स्पष्ट करता है। कवि धार्मिक आस्था की निष्क्रिय स्वीकृति नहीं, बल्कि

आलोचनात्मक विवेक की स्थापना करता है।

5. स्त्री-शोषण और सामाजिक विडंबना

एल.एन. सुधाकर की कविता सामाजिक विडंबनाओं और स्त्री-शोषण को भी गहरी वैचारिक दृष्टि से देखती है। कवि धार्मिक उत्सवों और सामाजिक वास्तविकताओं के बीच उपस्थित विरोधाभास को उजागर करता है। वह लिखता है-

''दुनिया उपहास उड़ाती है,
बेबसी और कंगाली का।
क्या मिटा सकेगा अँधियारा,
जीवन में दीया दिवाली का।।
द्रौपदी लगाई जाती हैं,
अब तक जुएँ के दावों पर।
क्या नहीं कुल्हाड़ी मार रहे,
खुद ही हम अपने पावों पर।।''4

यहाँ ''दीया दिवाली का'' धार्मिक उत्सव और सांस्कृतिक आडंबर का प्रतीक बनकर सामने आता है। कवि प्रश्न उठाता है कि क्या प्रतीकात्मक प्रकाश सामाजिक अँधेरे को समाप्त कर सकता है। ''बेबसी और कंगाली'' का उल्लेख यह स्पष्ट करता है कि समाज का बड़ा वर्ग अब भी आर्थिक और सामाजिक वंचना से घिरा हुआ है। दूसरी ओर ''द्रौपदी'' स्त्री-अस्मिता और ऐतिहासिक स्त्री-अपमान का प्रतीक बन जाती है। कवि यह स्पष्ट करता है कि स्त्री के वस्तुकरण और उसके सम्मान के साथ खिलवाड़ की प्रवृत्ति आज भी समाप्त नहीं हुई है। ''खुद ही हम अपने पावों पर'' कथन सामाजिक आत्मालोचन की दिशा में संकेत करता है। कवि केवल बाहरी शोषण की आलोचना नहीं करता, बल्कि समाज के भीतर उपस्थित विखंडन और आत्मघाती प्रवृत्तियों की भी समीक्षा करता है।

6. संघर्ष-चेतना और आंबेडकरवादी प्रतिरोध

एल.एन. सुधाकर की कविता में प्रतिरोध केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि संगठित संघर्ष की वैचारिक चेतना है। कवि शोषित समाज को संघर्ष, स्वाभिमान और राजनीतिक जागरूकता की दिशा में प्रेरित करता है। वह लिखता है-

''भीम-ज्योति प्रदीप कारवाँ बढ़ने लगा हमारा।
अम्बेडकरवाद का है बुलन्द भारत में आज सितारा।।
सीख लिया है दलितों ने अब जालिम से टकराना।
सीख लिया है अब जालिम की ईंट से ईंट से बजाना।।
शोषक आतताइयों को अब दलितों ने ललकारा।
सड़क से लेकर संसद तक जारी संघर्ष हमारा।।''5

इन पंक्तियों में ''भीम-ज्योति'' और ''आंबेडकरवाद'' प्रतिरोध और सामाजिक परिवर्तन के प्रतीक बनकर उभरते हैं। कवि स्पष्ट करता है कि शोषित समाज अब केवल पीड़ा सहने वाला निष्क्रिय समुदाय नहीं रहा, बल्कि उसने अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करना सीख लिया है। ''सड़क से लेकर संसद तक जारी संघर्ष हमारा'' कथन आंबेडकरवादी आंदोलन की सामाजिक और राजनीतिक दोनों दिशाओं को व्यक्त करता है। यहाँ कविता प्रतिरोध को केवल भावनात्मक असहमति तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन की संगठित शक्ति में रूपांतरित करती है।

7. निष्कर्ष

स्पष्ट है कि एल.एन. सुधाकर का कविता-संग्रह वामन फिर आ रहा है इक्कीसवीं सदी की आंबेडकरवादी कविता का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यह संग्रह मिथकीय प्रतीकों का पुनर्पाठ करते हुए मनुवादी सत्ता-संरचना, शिक्षा-वंचना, स्त्री-शोषण, धार्मिक आडंबर और सामाजिक विखंडन की तीखी आलोचना प्रस्तुत करता है। कवि मिथकों को धार्मिक श्रद्धा के स्थिर क्षेत्र से बाहर निकालकर सामाजिक संघर्ष और वैचारिक प्रतिरोध की भूमि में स्थापित करता है। उसकी कविता संगठन, स्वाभिमान, संघर्ष, वैज्ञानिक दृष्टि और सामाजिक समता को सामाजिक मुक्ति का आधार घोषित करती है। इस दृष्टि से वामन फिर आ रहा है केवल कविता-संग्रह नहीं, बल्कि आंबेडकरवादी वैचारिक चेतना का सशक्त साहित्यिक दस्तावेज है।

संदर्भ

1. एल.एन सुधाकर, वामन फिर आ रहा है, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2022, पृ. 16
2. वही, पृ. 18
3. वही, पृ. 49
4. वही, पृ. 57
5. वही, पृ. 83

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा शिकंजे का दर्द में स्त्री-अनुभव और सामाजिक चेतना

– नीरू देवी

शोध सारांश –

हिंदी आत्मकथा साहित्य में सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा शिकंजे का दर्द स्त्री जीवन के संघर्ष, सामाजिक विषमता, आत्मसम्मान और वैचारिक जागृति का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। यह आत्मकथा केवल व्यक्तिगत जीवन-कथा नहीं है, बल्कि उस सामाजिक संरचना का उद्घाटन भी करती है जिसमें स्त्री को अनेक प्रकार के बंधनों, अपमान और असमानताओं का सामना करना पड़ता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में शिकंजे का दर्द में अभिव्यक्त स्त्री-अनुभवों, पारिवारिक संबंधों, सामाजिक चेतना तथा आंबेडकरवादी दृष्टि का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आत्मकथा में स्त्री-संघर्ष का प्रश्न केवल लैंगिक नहीं, बल्कि सामाजिक सम्मान, शिक्षा, स्वाभिमान और मानवीय गरिमा से भी जुड़ा हुआ है।

बीज शब्द : सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, स्त्री-अनुभव, सामाजिक चेतना, स्वाभिमान, आंबेडकरवादी दृष्टि।

1. प्रस्तावना

हिंदी आत्मकथा साहित्य में स्त्री-अनुभवों की अभिव्यक्ति ने सामाजिक यथार्थ को समझने के नए आयाम प्रदान किए हैं। सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा शिकंजे का दर्द इसी परंपरा की एक उल्लेखनीय कृति है। यह आत्मकथा स्त्री जीवन के संघर्ष, सामाजिक असमानता, पारिवारिक दबाव और आत्मसम्मान की खोज का सशक्त आख्यान प्रस्तुत करती है। लेखिका ने अपने जीवनानुभवों के माध्यम से उस सामाजिक व्यवस्था का चित्रण किया है जिसमें स्त्री को स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार करने के बजाय उसके लिए पूर्वनिर्धारित भूमिकाएँ निर्धारित कर दी जाती हैं। इस दृष्टि से यह आत्मकथा केवल व्यक्तिगत स्मृतियों का संग्रह नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज है।

2. स्त्री जीवन पर सामाजिक नियंत्रण और लैंगिक असमानता

भारतीय समाज में स्त्रियों पर लगाए गए सामाजिक बंधनों की समस्या लंबे समय से विद्यमान रही है। सुशीला टाकभौरे अपने अनुभवों को व्यक्त करते हुए लिखती हैं-''समाज में लड़कियों पर बहुत बंधन लगाए जाते थे। श्रम और संघर्ष करने के बाद भी उन्हें समता-स्वतंत्रता का अधिकार नहीं मिलता था। लड़कियों के प्रति समाज में ऐसी भावना हिंदू धर्म ग्रंथों के आधार पर उन्हें अबला माने जाने के फलस्वरुप थी। अबला लड़कियों को सबला बनाने की भावना नहीं थी। धर्म और आदर्शों के त्याग, बलिदान की शिक्षा के साथ उन्हें शारीरिक और मानसिक रूप से हमेशा कमजोर बनाया गया। तर्क वितर्क के अभाव में वे उचित-अनुचित भी समझ नहीं पाती थीं। खुद के लिए विचार करना और निर्णय लेना उनके लिए कठिन था।''1 यह उद्धरण स्त्री के प्रति उस सामाजिक दृष्टिकोण को उद्घाटित करता है जिसमें उसे स्वतंत्र व्यक्तित्व के बजाय आश्रित और कमजोर मान लिया जाता है। लेखिका स्पष्ट करती हैं कि सामाजिक संरचना ने स्त्रियों को निर्णय लेने और तर्क करने की क्षमता से दूर रखने का कार्य किया। परिणामस्वरूप स्त्रियों का विकास अवरुद्ध हुआ।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने भी महिलाओं की उन्नति को सामाजिक परिवर्तन की अनिवार्य शर्त माना। वे कहते हैं-''आज से हमें अपनी उन्नति के लिए अतिरिक्त जोश के साथ काम में जुट जाना होगा। हमारे जो दोष हमारे और हिंदुओं ने तथा सरकार ने गुलामी का पट्टा डाल, हीन शिक्षण से पैदा कर हुए हैं, उन्हें दूर कर हमें अपनी आजादी हासिल करनी होगी। हमारी महिलाओं को इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए अपने रहन-सहन में तथा अन्य सामाजिक बातों में बहुत ही सुधार लाने होंगे।''2 आंबेडकर का यह विचार स्त्री को परिवर्तन की सक्रिय शक्ति के रूप में स्थापित करता है। वे महिलाओं की उन्नति को शिक्षा, आत्मनिर्भरता और सामाजिक जागृति से जोड़ते हैं। इस प्रकार टाकभौरे के अनुभव और आंबेडकर की दृष्टि दोनों इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि स्त्री की प्रगति के बिना सामाजिक प्रगति संभव नहीं है।

3. पारिवारिक अनुभव, आत्मसम्मान और सामाजिक गरिमा

स्त्री-संघर्ष का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष पारिवारिक जीवन से जुड़ा हुआ है। शिकंजे का दर्द में लेखिका ने विवाहोपरांत जीवन की अनेक कठिन परिस्थितियों का वर्णन किया है। वे लिखती हैं-''सभी सास-ननद बुरी नहीं होतीं, मगर मेरे साथ ऐसा हुआ है। मेरी ननद ने मुझे बहुत सताया, मेरे साथ मनमाना बुरा व्यवहार किया, हमेशा मेरे लिए बैर भाव रखा। स्त्रियां हर जगह शोषित पीड़ित हैं। यदि वे मिलकर रहें, तो अपने साथ दूसरी महिलाओं को भी शोषणमुक्त कर सकती हैं। वे पुरुषसत्ता की पीड़ा और अन्य अत्याचारों से मुक्ति पा सकती हैं। मगर तब यह बात मैं अपनी ननद को नहीं समझा सकती थी।''3 यहाँ लेखिका स्त्री द्वारा स्त्री के शोषण की समस्या की ओर संकेत करती हैं। यह तथ्य महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे स्पष्ट होता है कि स्त्री-विमर्श का प्रश्न केवल पुरुष और स्त्री के बीच संघर्ष का प्रश्न नहीं है। सामाजिक पूर्वाग्रह और असमानताएँ कभी-कभी स्त्रियों के व्यवहार में भी प्रतिबिंबित होती हैं।

डॉ. आंबेडकर महिलाओं के सामाजिक सम्मान और आत्मगौरव पर विशेष बल देते हैं। वे कहते हैं-''महिला समाज का अलंकार हैं यह आपको जानना होगा। हर समाज महिलाओं के चरित्र का बहुत अधिक सम्मान करता है। ... आप महिलाओं को समाज में क्या स्थान प्राप्त है, यह जानकर अपने बुरे जीवनक्रम का त्याग करना चाहिए, अपना खुद का तथा अपनी जाति का दर्जा और नाम ऊँचा करना चाहिए।''4 आंबेडकर का यह कथन स्त्री को समाज की गरिमा और नैतिक शक्ति के रूप में स्थापित करता है। उनकी दृष्टि में स्त्री का सम्मान केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामुदायिक सम्मान का भी प्रश्न है। इस संदर्भ में टाकभौरे की आत्मकथा स्त्री-अनुभवों के माध्यम से आत्मसम्मान और गरिमा की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

4. आंबेडकरवादी चेतना और सामाजिक परिवर्तन का बोध

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा में आंबेडकरवादी चेतना का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वे लिखती हैं-''रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया के कार्यक्रमों में बहुसंख्य लोगों को नीली टोपी और नीले झंडे के साथ देखकर नीले रंग के प्रति और बाबा साहब के प्रति आस्था बढ़ती रही।''5 यह कथन केवल राजनीतिक आकर्षण का संकेत नहीं है। इसके पीछे एक व्यापक वैचारिक परिवर्तन की प्रक्रिया कार्यरत है। नीला रंग यहाँ सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान और वैचारिक प्रतिबद्धता का प्रतीक बनकर उपस्थित होता है। लेखिका के जीवन में यह चेतना आत्मविश्वास और सामाजिक जागरूकता का आधार बनती है।

डॉ. आंबेडकर धर्म परिवर्तन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं-''हम धर्म परिवर्तन कर रहे हैं इस दुर्गंध भरे वातावरण से बाहर निकलने के लिए। सबको समता का, बंधुत्व का, स्वाभिमान का आदर्श जीवन प्राप्त हो और हर एक का जीवन उज्ज्वल हो, इस दृष्टि के साथ हम धर्म परिवर्तन के लिए तैयार हो गए हैं।''6 यह कथन स्पष्ट करता है कि आंबेडकर का संघर्ष केवल धार्मिक परिवर्तन का प्रश्न नहीं था, बल्कि समता, स्वाभिमान और मानवीय गरिमा की स्थापना का प्रश्न था। टाकभौरे की आत्मकथा में भी यही चेतना दिखाई देती है। उनके अनुभव व्यक्तिगत पीड़ा तक सीमित नहीं रहते, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और आत्मसम्मान की व्यापक आकांक्षा से जुड़ जाते हैं।

निष्कर्ष

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा शिकंजे का दर्द स्त्री जीवन की जटिलताओं, संघर्षों और आत्मसम्मान की खोज का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। आत्मकथा में व्यक्त अनुभव यह स्पष्ट करते हैं कि स्त्री के सामने उपस्थित चुनौतियाँ केवल पारिवारिक या व्यक्तिगत नहीं हैं, बल्कि वे व्यापक सामाजिक संरचना से जुड़ी हुई हैं। लेखिका ने सामाजिक बंधनों, पारिवारिक उत्पीड़न और वैचारिक जागृति को अपने अनुभवों के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। डॉ. आंबेडकर के विचारों के आलोक में देखने पर यह स्पष्ट होता है कि स्त्री-मुक्ति का प्रश्न केवल अधिकारों की मांग तक सीमित नहीं है। शिक्षा, आत्मसम्मान, सामाजिक चेतना, नैतिक गरिमा और समतामूलक समाज की स्थापना इसके प्रमुख आधार हैं। इसी कारण शिकंजे का दर्द केवल एक आत्मकथा नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता का दस्तावेज बन जाती है।

संदर्भ

1. सुशीला टॉकभौरे, शिकंजे का दर्द, प्रलेक प्रकाशन गाजियाबाद, संस्करण 2023, पृ. 39
2. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, आंबेडकर प्रतिष्ठान नई दिल्ली, खंड 38, संस्करण 2020, पृ. 258
3. सुशीला टॉकभौरे, शिकंजे का दर्द, प्रलेक प्रकाशन गाजियाबाद, संस्करण 2023, पृ. 148-149)
4. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, आंबेडकर प्रतिष्ठान नई दिल्ली, खंड 38, संस्करण 2020, पृ. 530-531
5. सुशीला टॉकभौरे, शिकंजे का दर्द, प्रलेक प्रकाशन गाजियाबाद, संस्करण 2023, पृ. 187)
6. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, आंबेडकर प्रतिष्ठान नई दिल्ली, खंड 38, संस्करण 2020, पृ. 530

बी.आर. बुद्धप्रिय के निबंधों में समकालीन आंबेडकरवादी चिंतन

- सीमा वाल्मीकि

सारांश

आंबेडकरवादी चिंतन भारतीय समाज में समानता, न्याय, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा की स्थापना का वैचारिक आधार प्रस्तुत करता है। यह चिंतन केवल सामाजिक असमानताओं की आलोचना तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज के पुनर्गठन की दिशा भी प्रदान करता है। डॉ. बी.आर. बुद्धप्रिय का निबंध-संग्रह आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत आंबेडकरवादी चिंतन को समकालीन भारतीय समाज की समस्याओं और चुनौतियों के संदर्भ में समझने का महत्वपूर्ण प्रयास है। प्रस्तुत शोध-पत्र में इस निबंध-संग्रह के आधार पर समाज के पुनर्गठन, जाति उन्मूलन, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक लोकतंत्र, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, शिक्षा, धम्म तथा समकालीन भारत की चुनौतियों जैसे प्रमुख विषयों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बुद्धप्रिय ने आंबेडकरवादी चिंतन को वर्तमान भारतीय समाज के लिए एक प्रासंगिक और परिवर्तनकारी वैचारिक आधार के रूप में प्रस्तुत किया है।

बीज शब्द: आंबेडकरवादी चिंतन, सामाजिक न्याय, सामाजिक लोकतंत्र, जाति उन्मूलन, शिक्षा, धम्म, राजनीतिक प्रतिनिधित्व।

1. प्रस्तावना

डॉ. भीमराव आंबेडकर आधुनिक भारत के उन महान चिंतकों में हैं जिन्होंने भारतीय समाज की संरचना का गहन विश्लेषण करते हुए सामाजिक परिवर्तन की स्पष्ट दिशा प्रस्तुत की। उन्होंने भारतीय समाज में विद्यमान जातिगत असमानता, सामाजिक विभाजन और वंचना को केवल सामाजिक समस्या के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे मानव-मुक्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा माना। उनके चिंतन का केंद्र ऐसा समाज था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को समान मानवीय गरिमा प्राप्त हो और उसके विकास के अवसर जन्म या जाति से निर्धारित न हों। समकालीन भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था, संवैधानिक अधिकारों और आधुनिक शिक्षा के विस्तार के बावजूद सामाजिक विषमता के अनेक रूप आज भी विद्यमान हैं। ऐसे समय में आंबेडकरवादी चिंतन की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है। डॉ. बी.आर. बुद्धप्रिय का निबंध-संग्रह आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत इसी संदर्भ में महत्वपूर्ण है। इस संग्रह में लेखक ने आंबेडकर के विचारों को केवल ऐतिहासिक संदर्भ तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें वर्तमान भारतीय समाज की समस्याओं के साथ जोड़कर देखा है।

2. समाज के पुनर्गठन की अवधारणा

बुद्धप्रिय के अनुसार डॉ. आंबेडकर का मिशन केवल सामाजिक आलोचना तक सीमित नहीं था। उनका उद्देश्य समाज की मूल संरचना का पुनर्गठन करना था। आंबेडकर का मानना था कि यदि समाज की संगठनात्मक व्यवस्था ही असमानता पर आधारित होगी, तो उसके भीतर न्यायपूर्ण संबंधों का विकास नहीं हो सकता। वे लिखते हैं-''डॉ. आंबेडकर की वैचारिक दिशा का मूल आधार यह था कि समाज का संगठन समानता और न्याय के सिद्धांतों पर होना चाहिए।''1 यह कथन आंबेडकरवादी चिंतन की मूल दिशा को स्पष्ट करता है। आंबेडकर सामाजिक समस्याओं को केवल व्यक्तिगत व्यवहार या नैतिक कमजोरी का परिणाम नहीं मानते थे। उनके अनुसार सामाजिक असमानता का स्रोत समाज की संरचनात्मक व्यवस्था में निहित है। इसलिए वास्तविक परिवर्तन तभी संभव है जब समाज के संगठन के मूल सिद्धांत बदले जाएँ। बुद्धप्रिय इस विचार को समकालीन संदर्भ में विस्तार देते हैं। उनके अनुसार वर्तमान भारतीय समाज में लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना के बावजूद अनेक प्रकार की असमानताएँ बनी हुई हैं। इसका कारण यह है कि सामाजिक संबंधों और मानसिकताओं में अपेक्षित परिवर्तन नहीं हो पाया है। इसलिए आंबेडकर का पुनर्गठन संबंधी विचार आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था।

समाज का पुनर्गठन केवल संस्थागत परिवर्तन का प्रश्न नहीं है। यह उन मूल्यों की स्थापना का प्रश्न भी है जो मनुष्य को

मनुष्य के रूप में स्वीकार करने की दृष्टि प्रदान करें। इस प्रकार बुद्धप्रिय के निबंधों में सामाजिक पुनर्गठन का विचार समता, न्याय और मानवीय सम्मान की स्थापना से जुड़ा हुआ दिखाई देता है।

3. जाति उन्मूलन और मानवीय गरिमा

बुद्धप्रिय के निबंधों में जाति-व्यवस्था को भारतीय समाज की सबसे गंभीर समस्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है। लेखक के अनुसार जाति केवल सामाजिक विभाजन की व्यवस्था नहीं है, बल्कि वह मानवीय गरिमा और लोकतांत्रिक मूल्यों के विरुद्ध कार्य करने वाली संरचना है। वे लिखते हैं-

''जब तक समाज जन्म आधारित विभाजनों से मुक्त नहीं होगा, तब तक समानता और न्याय की स्थापना संभव नहीं होगी।''2 इस संदर्भ में डॉ. आंबेडकर का प्रसिद्ध कथन उल्लेखनीय है-''जाति एक ऐसा दैत्य है, जो आपके मार्ग में खड़ा है। जब तक आप इस दैत्य को नहीं मारेंगे, आप न कोई राजनीतिक सुधार कर सकते हैं, न कोई आर्थिक सुधार।''3 यह कथन स्पष्ट करता है कि जाति केवल सामाजिक जीवन को प्रभावित नहीं करती, बल्कि राजनीतिक और आर्थिक विकास में भी बाधा उत्पन्न करती है। आंबेडकर के लिए जाति का प्रश्न केवल सामाजिक सुधार का विषय नहीं था, बल्कि लोकतंत्र और मानवाधिकारों की स्थापना से जुड़ा हुआ प्रश्न था।

बुद्धप्रिय के अनुसार जाति-व्यवस्था समाज के विभिन्न वर्गों के बीच स्थायी दूरी पैदा करती है। इससे सामाजिक सहयोग, लोकतांत्रिक सहभागिता और मानवीय संबंधों का विकास बाधित होता है। जब व्यक्ति की पहचान उसकी मानवता के बजाय उसके जन्म से निर्धारित की जाती है, तब सामाजिक न्याय की संभावना कमजोर हो जाती है। इसीलिए बुद्धप्रिय जाति उन्मूलन को सामाजिक पुनर्गठन की पहली शर्त मानते हैं। उनके अनुसार समानता और मानवीय गरिमा पर आधारित समाज की स्थापना जाति-व्यवस्था के उन्मूलन के बिना संभव नहीं है।

4. सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक चेतना

बुद्धप्रिय सामाजिक परिवर्तन को एक निरंतर प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार सामाजिक परिवर्तन केवल कानूनों या प्रशासनिक सुधारों से नहीं आता, बल्कि उसके लिए सामाजिक चेतना का विकास आवश्यक है। वे लिखते हैं-''जब समाज के भीतर विचारों का आदान-प्रदान होता है और लोग सामाजिक समस्याओं पर चर्चा करते हैं, तब नई दृष्टियाँ विकसित होती हैं।''4 यह विचार आंबेडकरवादी चिंतन के उस पक्ष को सामने लाता है जो विचार और चेतना की भूमिका पर बल देता है। आंबेडकर का मानना था कि जब तक लोग अपनी सामाजिक स्थिति को समझेंगे नहीं, तब तक वे परिवर्तन की आवश्यकता को भी नहीं समझ पाएँगे। बुद्धप्रिय के अनुसार सामाजिक चेतना अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं को पहचानने और उन्हें चुनौती देने की क्षमता प्रदान करती है। यह चेतना व्यक्ति को निष्क्रिय स्वीकार्यता से बाहर निकालकर सक्रिय सामाजिक भागीदारी की ओर ले जाती है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में वैचारिक जागरूकता की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है।

सामाजिक चेतना का विकास लोकतांत्रिक मूल्यों को भी मजबूत करता है। जब लोग समानता और न्याय के सिद्धांतों को समझते हैं, तब वे समाज में अधिक उत्तरदायी भूमिका निभाने लगते हैं। इस प्रकार सामाजिक चेतना सामाजिक परिवर्तन का आधार बनती है।

5. सामाजिक लोकतंत्र की अवधारणा

आंबेडकरवादी चिंतन में लोकतंत्र केवल शासन-व्यवस्था नहीं है। बुद्धप्रिय के अनुसार लोकतंत्र का वास्तविक आधार सामाजिक लोकतंत्र है। यदि समाज के भीतर समानता और सम्मान के संबंध विकसित नहीं होंगे, तो राजनीतिक लोकतंत्र भी स्थायी नहीं रह सकेगा। वे लिखते हैं-''डॉ. भीमराव आंबेडकर ने इन सिद्धांतों को सामाजिक लोकतंत्र की आधारभूमि माना। उनके अनुसार समाज तभी लोकतांत्रिक बन सकता है जब उसके सामाजिक संबंध इन मूल्यों पर आधारित हों।''5 यह विचार स्पष्ट करता है कि लोकतंत्र केवल चुनावों और प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं है। लोकतंत्र का वास्तविक स्वरूप सामाजिक संबंधों में दिखाई देता है। यदि समाज के भीतर भेदभाव और असमानता बनी रहे, तो लोकतंत्र का स्वरूप केवल औपचारिक रह जाएगा।

बुद्धप्रिय सामाजिक लोकतंत्र को समानता, स्वतंत्रता और पारस्परिक सम्मान पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार आंबेडकर ने लोकतंत्र को जीवन-पद्धति के रूप में समझा था। यह दृष्टिकोण लोकतंत्र को केवल राजनीतिक अवधारणा के बजाय सामाजिक मूल्य के रूप में स्थापित करता है। समकालीन भारत में सामाजिक लोकतंत्र का प्रश्न विशेष महत्व रखता है क्योंकि संवैधानिक लोकतंत्र की सफलता अंततः सामाजिक संबंधों की प्रकृति पर

निर्भर करती है।

6. राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक न्याय

राजनीतिक प्रतिनिधित्व आंबेडकरवादी चिंतन का महत्वपूर्ण आयाम है। बुद्धप्रिय के अनुसार लोकतंत्र तभी प्रभावी हो सकता है जब समाज के सभी वर्गों को शासन और निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी प्राप्त हो। वे लिखते हैं-''डॉ. आंबेडकर का विचार था कि लोकतंत्र तभी प्रभावी बन सकता है जब समाज के विभिन्न वर्गों को शासन की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर मिले।''6 राजनीतिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न सामाजिक न्याय से गहराई से जुड़ा हुआ है। यदि समाज के कुछ वर्ग लगातार निर्णय प्रक्रिया से बाहर रखे जाएँ, तो उनकी समस्याएँ सार्वजनिक नीति का हिस्सा नहीं बन पातीं।

बुद्धप्रिय के अनुसार आंबेडकर प्रतिनिधित्व को केवल राजनीतिक अधिकार नहीं, बल्कि सामाजिक समानता का माध्यम मानते थे। प्रतिनिधित्व से वंचित समुदायों को अपनी आवाज़ और भागीदारी प्राप्त होती है, जिससे लोकतंत्र अधिक उत्तरदायी और संतुलित बनता है। इस प्रकार राजनीतिक प्रतिनिधित्व लोकतंत्र को केवल प्रक्रियात्मक व्यवस्था न बनाकर उसे सामाजिक न्याय का साधन भी बनाता है।

7. शिक्षा और सामाजिक समानता

आंबेडकरवादी चिंतन में शिक्षा को मुक्ति का सबसे प्रभावी साधन माना गया है। बुद्धप्रिय शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन, आत्मसम्मान और अधिकार-चेतना का आधार मानते हैं। वे लिखते हैं-''उनके अनुसार शिक्षा सामाजिक समानता की दिशा में एक महत्वपूर्ण साधन है। जब समाज के वंचित वर्ग शिक्षित होते हैं, तब वे अपने अधिकारों और अवसरों के प्रति अधिक जागरूक होते हैं।''7 शिक्षा व्यक्ति को अपनी स्थिति को समझने और सामाजिक वास्तविकताओं का विश्लेषण करने की क्षमता प्रदान करती है। यह उसे परंपरागत असमानताओं को चुनौती देने का बौद्धिक आधार देती है।

बुद्धप्रिय के अनुसार शिक्षा केवल व्यक्तिगत उन्नति का माध्यम नहीं है। उसका संबंध समाज की संरचना और सामाजिक संबंधों से भी है। जब समाज के सभी वर्गों को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त होते हैं, तब सामाजिक संतुलन और लोकतांत्रिक सहभागिता भी मजबूत होती है। इस प्रकार शिक्षा आंबेडकरवादी चिंतन में सामाजिक परिवर्तन की केंद्रीय शक्ति के रूप में उपस्थित होती है।

8. धम्म और नैतिक पुनर्गठन

बुद्धप्रिय के निबंधों में धम्म की अवधारणा विशेष महत्व रखती है। यहाँ धम्म का अर्थ किसी धार्मिक कर्मकांड से नहीं, बल्कि नैतिक जीवन और सामाजिक उत्तरदायित्व से है। वे लिखते हैं-''डॉ. भीमराव आंबेडकर का विचार था कि समाज को केवल कानूनों के माध्यम से संचालित नहीं किया जा सकता। यदि समाज के भीतर नैतिक चेतना का विकास नहीं होगा, तो कानून भी सीमित प्रभाव ही डाल पाएंगे।''8 यह विचार स्पष्ट करता है कि आंबेडकर सामाजिक परिवर्तन को केवल कानूनी प्रक्रिया नहीं मानते थे। उनके अनुसार समाज की स्थिरता और प्रगति के लिए नैतिक आधार आवश्यक है।

बुद्धप्रिय धम्म को सामाजिक जीवन के नैतिक संगठन का आधार मानते हैं। धम्म व्यक्ति को यह समझने में सहायता करता है कि उसके कार्य केवल उसके निजी जीवन को नहीं, बल्कि समाज को भी प्रभावित करते हैं। धम्म के माध्यम से सहयोग, करुणा, समानता और उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों का विकास होता है। इसलिए बुद्धप्रिय के अनुसार धम्म सामाजिक पुनर्गठन और नैतिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण साधन है।

9. समकालीन भारत और आंबेडकरवादी चिंतन

बुद्धप्रिय के अनुसार समकालीन भारत अनेक उपलब्धियों के साथ-साथ अनेक चुनौतियों का भी सामना कर रहा है। लोकतांत्रिक व्यवस्था, शिक्षा और तकनीकी विकास के बावजूद सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ अभी भी विद्यमान हैं। वे लिखते हैं-''डॉ. भीमराव आंबेडकर ने समाज के विकास के लिए समानता और न्याय को अत्यंत महत्वपूर्ण माना था। उनके अनुसार यदि समाज के भीतर असमानता बनी रहेगी, तो लोकतंत्र भी स्थिर नहीं रह सकेगा।''9 यह कथन समकालीन भारत की वास्तविक स्थिति को समझने में महत्वपूर्ण है। लेखक के अनुसार लोकतंत्र की सफलता केवल संवैधानिक व्यवस्थाओं पर निर्भर नहीं करती, बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि समाज किस सीमा तक समानता और न्याय के मूल्यों को स्वीकार करता है।

समकालीन भारत में सामाजिक और आर्थिक विषमता, अवसरों की असमानता तथा सामाजिक विभाजन जैसी समस्याएँ अभी भी मौजूद हैं। इन परिस्थितियों में आंबेडकरवादी चिंतन एक वैकल्पिक दिशा प्रदान करता है। बुद्धप्रिय का निष्कर्ष यह है कि यदि भारत को अधिक न्यायपूर्ण और लोकतांत्रिक समाज बनाना है, तो उसे आंबेडकर के समता,

न्याय और मानवीय गरिमा संबंधी विचारों को व्यवहार में उतारना होगा।

10. निष्कर्ष

डॉ. बी.आर. बुद्धप्रिय के निबंधों का अध्ययन स्पष्ट करता है कि उनका चिंतन आंबेडकरवाद को केवल ऐतिहासिक विमर्श के रूप में प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि उसे समकालीन भारतीय समाज के पुनर्गठन का वैचारिक आधार मानता है। उनके निबंधों में सामाजिक पुनर्गठन, जाति उन्मूलन, सामाजिक चेतना, सामाजिक लोकतंत्र, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, शिक्षा, धम्म और समकालीन भारत की चुनौतियाँ एक–दूसरे से जुड़ी हुई अवधारणाओं के रूप में सामने आती हैं।

बुद्धप्रिय का मानना है कि आंबेडकर का मिशन अभी भी पूर्ण नहीं हुआ है। सामाजिक असमानता, अवसरों की विषमता और लोकतांत्रिक मूल्यों के समक्ष उपस्थित चुनौतियाँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि आंबेडकरवादी चिंतन आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था। इस दृष्टि से आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत समकालीन आंबेडकरवादी चिंतन को समझने की एक महत्वपूर्ण कृति है।

संदर्भ सूची

1. बी.आर. बुद्धप्रिय, आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत, आंबेडकरवादी साहित्य प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण 2026, पृ. 19
2. वही, पृ. 28
3. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, आंबेडकर प्रतिष्ठान नई दिल्ली, संस्करण 2020, खंड 1, पृ. 53
4. बी.आर. बुद्धप्रिय, आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत, आंबेडकरवादी साहित्य प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण 2026, पृ. 31
5. वही, पृ. 45
6. वही, पृ. 50
7. वही, पृ. 69
8. वही, पृ. 79
9. वही, पृ. 85



मुक्ति कौन पथे?
(बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड 38 से)

–

13 अक्टूबर, 1935 को येवले में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने ऐतिहासिक घोषणा की कि, ''मैं अस्पृश्य हिंदू का दाग लेकर पैदा हुआ, लेकिन यह बात मेरे बस में नहीं थी। किंतु, हिंदू कहलाते हुए मैं मरूँगा नहीं, यह बात मेरे बस में है।'' उनकी इस घोषणा से हिंदू तथा अन्य धर्म के लोग हक्काबक्का हुए जाग गए। उनकी कही बात पर अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ आने लगी थीं। इस बारे में सभी आयामों से सोच-विचार कर डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने आगे की कार्यवाही की रूपरेखा तय करने के लिए अखिल मुंबई इलाका महार परिषद की ओर से मुंबई में दिनांक 30, 31 मई और 1 जून, 1936 को परिषद का आयोजन किया था। इसी अवसर पर मुंबई इलाका संत समाज की परिषद, मुंबई इलाका मातंग परिषद और राजकीय परिषद का आयोजन भी किया गया था। इस अवसर पर प्रकाशित किए गए पत्रक, कार्यक्रम की जानकारी और डॉ. बाबासाहेब के भाषण यहाँ दे रहे हैं। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के आमूलाग्र समाज परिवर्तन की क्रांति में इन सभी परिषदों का असाधारण और ऐतिहासिक महत्त्व है।

'मुक्ति कौन पथे?' – इस प्रमुख भाषण के बाद मुंबई इलाका अस्पृश्य संत समाज की परिषद, राजकीय परिषद और मुंबई इलाका मातंग परिषद में हुए डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के भाषण आगे इसी अनुक्रम से अलग से दिए जा रहे हैं – (संपादक)

अखिल मुंबई इलाका महार परिषद आयोजित करने के पीछे की भूमिका व्यक्त करने वाला पत्रक इस प्रकार था–

अखिल अस्पृश्यों के इकलौते नेता, दीनबंधु डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने दिनांक 13 अक्टूबर, 1935 के दिन नासिक जिले के येवले में हुई परिषद में कहा कि, हिंदू धर्म की समाज रचना विषमता की नींव पर खड़ी है, इसलिए हिंदू के रूप में हम इंसानियत के अधिकार पाने के लिए भले कितनी भी कोशिशें क्यों न करें हमें सफलता मिलना मुमकिन नहीं है। आपने महाड, नासिक और अन्य जगहों पर सत्याग्रह करके समानता के अधिकार पाने के लिए कड़ी और जोरदार कोशिश की, लेकिन इस कोशिश में हमारा पैसा और मेहनत ही बर्बाद हुई। सफलता तो मिली ही नहीं, उल्टे हमारे बंधु-बांधवों को गाँव-गाँव में तरह-तरह के अत्याचार/कष्ट भी सहन करने पड़े, और अभी तक करने पड़ रहे हैं। इसलिए, अगर आप इंसान के रूप में जीवन बिताना चाहते हैं तो हमें इस हिंदू धर्म से अलग होना चाहिए। यानी, हमें धर्म परिवर्तन करना चाहिए। इसी में हम सभी अस्पृश्यों का कल्याण समाया हुआ है।

अस्पृश्यों के धर्म परिवर्तन का सवाल बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस समस्या से संबंधित अस्पृश्यों की नीति तय करना अस्पृश्यों का कर्तव्य ही नहीं, अपितु यह उनकी जिम्मेदारी है। डॉ. बाबासाहेब के मतानुसार, अस्पृश्यों की अलग-अलग जातियों की अलग-अलग परिषदें आयोजित कर उसमें इस सवाल पर विचार किया जा सकता है और अस्पृश्य जनता का इस बारे में, क्या सोच है, क्या विचार है, यह जाना जा सकता है।

इस सूचना के अनुसार मुंबई इलाके के सभी महार भाई-बहनों को विनतीपूर्वक सूचित किया जाता है कि मुंबई इलाके के सभी महारों की प्रतिनिधिक स्वरूप की एक परिषद मुंबई शहर में अगले मई महीने में आयोजित करना तय हुआ है। परिषद में अपने परमपूज्य नेता डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने धर्म परिवर्तन के बारे में जो घोषणा की है, उस संदर्भ में हमारे समाज की नीति क्या होनी चाहिए, इस संदर्भ में निर्णय लिया जाएगा। इसीलिए इस परिषद में हिस्सा लेने के लिए, हर जिले से, तहसील से, और हर गाँव से अपने प्रतिनिधियों को भेज कर परिषद को सफल बनाएँगे, ऐसी मैं उम्मीद करता हूँ।

अपना यह काम बहुत बड़ा और महत्त्वपूर्ण होने की वजह से इस काम में पैसों की और लोगों की भी बहुत जरूरत है। इसीलिए, मुंबई शहर के रहने वालों के लिए और इलाके के अखिल महार बंधु-भगिनियों से आग्रह के साथ विनती की

जाती है, कि वे आपसी, निजी मतभेद भुला कर, एक साथ इस समारोह में भाग लेकर परिषद को सफल बनाएँ।

विशेष सूचना - परिषद के लिए चंदा अथवा दान देना हो तो अथवा कुछ सूचना या अन्य पत्राचार करना हो तो यहाँ दिए जा रहे पते पर ही करें-

संयुक्त सचिव - अखिल मुंबई इलाका महार परिषद, दामोदर हॉल, परेल, मुंबई नं. 12

याद रहे : छपी हुई रसीद लिए बगैर चंदा न दें।

आपके विनम्र,

अध्यक्ष : रेवजी दादुजी डोलेस,

उपाध्यक्ष : संभाजी तुकाराम गायकवाड,

संयुक्त सचिव : दिवाकर नेवजी पगारे, मारुति विट्ठल घमरे, चांगदेव नारायण मोहिते।

कोषाध्यक्ष : सुभेदार विश्वाम गंगाधर सवादकर।

1. जनता, 29 फरवरी, 1936

उपरोक्त भूमिका को स्वीकार कर महार परिषद, संत समाज परिषद और मातंग परिषद आयोजित की गई थीं। आयोजकों ने अपने कार्यक्रमों के अलग-अलग पत्रक निकाले थे। वे इस प्रकार थे-

अखिल मुंबई इलाका महार परिषद, मुंबई

अध्यक्ष : मे. बी. एस. वेंकटराव उर्फ हैदराबादी आंबेडकर

शनिवार, रविवार और सोमवार दिनांक 30-31 मई, 1 जून, 1936।

जगह : कामगार मैदान, परेल, मुंबई नं. 12

जैसा कि इससे पूर्व घोषित किया गया था, अखिल मुंबई इलाका महार परिषद का पूरा कार्यक्रम अगले अंक में दिया जाएगा। इस परिषद में धर्म परिवर्तन के बारे में मुंबई इलाके के महार समाज की नीति क्या होनी चाहिए। उसके अनुसार ही महार समाज के हित में सभी मामलों पर सोच-विचार कर आगे कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की जाएगी।

आगे चल कर इस परिषद के विषय में इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जाएगा। इसीलिए, हर महार बंधु-भगिनी इस परिषद में उपस्थित रह कर अपनी सक्रिय सहानुभूति व्यक्त करें। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर चाहते हैं कि यह परिषद प्रतिनिधिक स्वरूप की होनी चाहिए। इसीलिए अलग-अलग जगह के महार समाज को चाहिए कि वे अपने प्रतिनिधि तुरंत निश्चित कर उनके नाम-पते भेजें। बाहर से आने वाले लोग अपना चंदा, परिषद के बारे में सूचना, प्रस्ताव आदि नीचे दिए जा रहे पते पर भेजें अथवा प्रत्यक्ष संपर्क करें।

खास सूचना : बाहर से आने वाले लोगों के रहने और खाने का प्रबंध स्वागत मंडल की ओर से किया गया है। परिषद के तीनों दिनों का मिला कर भोजन और रहने का चंदा एक रुपया रखा गया है। जो लोग इस सुविधा का लाभ लेना चाहते हैं, वे आगे दिए जा रहे पते पर संपर्क करें और दिनांक 28-5-1936 तक अपने नाम दर्ज कराएँ।

परिषद के लिए चंदा इस प्रकार रखा गया है-

स्वागत मंडल के सदस्य : रु. 5

सहयोगी सदस्य : रु. 3

बाहर गाँव से आने वाले सदस्यों के लिए स्वागत मंडल के सदस्य : रु. 3

साधारण सहकारी सदस्य : रु. 2

सर्वसाधारण सदस्य : रु. 1

महिलाएँ : केवल आठ आने।

मुंबई इलाका महार परिषद के मंच के अन्य कार्यक्रम

शनिवार दिनांक 30 मई, 1936 : शाम 4 से 5.30 'अध्यक्ष का जुलूस' राजगृह, दादर से लेकर सभा मंडप तक। 5.30 से 6 बजे तक : स्वयंसेवकों की तरफ से डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर और अध्यक्ष का स्वागत। 6 से 9 बजे तक (1) स्वागत पद्य, (2) स्वागताध्यक्ष का भाषण, (3) अध्यक्ष का भाषण। रात 9.30 से 10.30 भोजनावकाश। 10.30 - 11.30 विषय तय करने वाली कमेटी की बैठक। 11.45 से मनोरंजन के विभिन्न कार्यक्रम।

रविवार दिनांक 31 मई, 1936 :

सुबह 8-11 (1) स्वागत पदों का प्रस्तुतिकरण; (2) डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर का भाषण। 11 से 2 भोजन और आराम। दोपहर 2-4 विषय तय करनेवाली कमेटी की बैठक। शाम 5 से 8.30 - प्रस्ताव आदि। रात 9 बजे से मनोरंजन के कार्यक्रम। अध्यक्ष के प्रति आभार प्रकट करना और परिषद का विसर्जन।

सोमवार दिनांक 1-6-36 :

इस दिन डॉ. बाबासाहेब की अध्यक्षता में सुबह 8 से 11.30 तक संत समाज की परिषद। शाम 5 से 8.30 राजकीय परिषद। रात 9 बजे श्री रेवजी दागुजी डोलेस को मुंबई शहरवासी अस्पृश्य समाज की ओर से मानपत्र और महार परिषद की बेहतर तरीके से मदद करने वालों को पुरस्कार और धन्यवाद ज्ञापन, अध्यक्ष का भाषण और परिषद का समापन।

आपके विनम्र

स्वागताध्यक्ष : रेवजी दागुजी डोलेस

उपाध्यक्ष : संभाजी तुकाराम गायकवाड

संयुक्त सचिव : दिवाकर नेवजी पगारे, मारुति विट्ठल घमरे, चांगदेव ना. मोहिते

कोषाध्यक्ष : सुबेदार विश्वाम गंगाराम सवादकर

पैसा और पत्र आदि भेजने का पता

संयुक्त सचिव श्री दिवाकर नेवजी पगारे

अखिल मुंबई इलाका महार परिषद, दामोदर हॉल,

परेल, मुंबई नं. 12

1. जनता, 16 मई, 1936

मुंबई इलाका संत समाज की परिषद

अध्यक्ष-डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर

सोमवार, दिनांक 1 जून, 1936 के दिन

स्थान - महार परिषद का मंडप

धर्म परिवर्तन के सवाल के बारे में संत समाज की ओर से विचार-विमर्श किया जाएगा।

परिषद के बारे में विस्तार से जानकारी देने वाले पत्रक रवाना किए जा रहे हैं। सभी संत, साधु, नाथ, बैरागी आदि लोग इस परिषद में हिस्सा लें। पत्राचार आगे दिए जा रहे पते पर करें-

पता-

उपाध्यक्ष - तारकनाथ विट्ठलनाथ

फोरास रोड, सिमेंट चाल नं. 6, मुंबई नं. 8

स्वागताध्यक्ष- महंत शंकरदास नारायणदास बर्वे

ज. सचिव - काशिनाथ तुलसीनाथ महंत

मुंबई इलाका मातंग परिषद

अध्यक्ष - मे. लक्ष्मणराव बाबाजी भिंगारदेवे बी. ए. (ऑनर्स)

मंगलवार, दिनांक 2 जून, 1936

स्थान : महार परिषद का मंडप, नायगांव, मुंबई

इस परिषद में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के धर्म परिवर्तन के सवाल पर निर्णय लेने के उद्देश्य से विचार-विमर्श किया जाएगा।

परिषद के बारे में विस्तृत जानकारी सार्वजनिक पत्रक निकाल कर हमारे मातंग बंधुओं को दी जाएगी। अन्य पूछताछ के लिए आगे दिए जा रहे पते पर पत्राचार करें-

स्वागताध्यक्ष - विष्णु केशव वेतालजे

पता-

महासचिव डी. सी. वायंडे

मुंबई इलाका मातंग परिषद, नायगांव, बी. डी. चाल नं. 4, बी. फ्लॉट, पहली मंजिल, खोली नं. 26, दादर-मुंबई।

1. जनता, 30 मई, 1936

''अखिल मुंबई इलाका महार परिषद, मुंबई''

अपूर्व एवं सफल अधिवेशन

सामुदायिक धर्म परिवर्तन को समर्थन

मुंबई इलाका महार परिषद का अधिवेशन दिनांक 30 मई, 1936 के दिन हैदराबाद संस्थान के प्रसिद्ध नेता श्री. बी. एस. वेंकटराव की अध्यक्षता में बड़ी धूमधाम से शुरू हुआ। इस परिषद के लिए दादर-नायगांव नाके पर स्थित विश्रांति मैदान पर 50 हजार से अधिक लोग आराम से बैठ सकें, इतना विशाल मंडप खड़ा किया गया था। इस विस्तीर्ण मंडप में महाड़ दरवाजा, नासिक दरवाजा और रमाबाई अम्बेडकर दरवाजा नाम से तीन बड़े दरवाजे बनाए गए थे। मंडप का नामकरण रमाबाई नगर किया गया था। मंडप में कुछ सूक्तियों वाली तख्तियाँ टंगी थीं जिन पर आगे दी जा रही सूक्तियों जैसी घोषणाएँ लिखी हुई थीं-

इंसानियत पाना चाहते हैं तो धर्म परिवर्तन करें। संगठन बनाना चाहते हों तो धर्म परिवर्तन करें।

सामर्थ्य प्राप्त करना चाहते हैं तो धर्म परिवर्तन करें।

सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं तो धर्म परिवर्तन करें।

स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते हैं तो धर्म परिवर्तन करें।

गृहस्थी को सुखकारी बनाना चाहते हैं तो धर्म परिवर्तन करें।

जो धर्म आपके अंदर के इंसान का सम्मान नहीं करता, उस धर्म में आप क्यों रहते हैं?

जो धर्म आपको मंदिर में प्रवेश नहीं देता, उस धर्म में आप क्यों रहते हैं?

जो धर्म आपको पानी मिलने नहीं देता, उस धर्म में आप क्यों रहते हैं?

जो धर्म आपको शिक्षा लेने नहीं देता, उस धर्म में आप क्यों रहते हैं?

जो धर्म पग-पग पर आपकी मानहानि करता है, उस धर्म में आप क्यों रहते हैं?

जो धर्म आपकी नौकरी के आड़े आता है, उस धर्म में आप क्यों रहते हैं?

जिस धर्म में इंसान के साथ इंसानियत से पेश आना मना है वह धर्म नहीं, बरजोरी (जुल्म, जबरदस्ती) की सजावट है।

जिस धर्म में इंसान की इंसानियत पहचानना अधर्म माना जाता है, वह धर्म नहीं, वह तो रोग है।

जिस धर्म में अमंगल पशु का स्पर्श हो तो चलता है, लेकिन इंसान का स्पर्श नहीं चलता, वह धर्म नहीं, पागलपन है।

जो धर्म बताता है कि समाज का एक वर्ग विद्या न प्राप्त करे, धनसंचय न करे, शस्त्रधारण न करे, वह धर्म नहीं, इंसान के जीवन का विडंबन है।

जो धर्म अनपढ़ लोगों को अनपढ़ ही रहने की, निर्धनों को निर्धन रहने की सीख देता है वह धर्म नहीं सजा है।

सबमें एक ही ईश्वर होता है, कहने वाले लेकिन इंसान को पशु के समान मानने वाले लोग पाखंडी हैं, उनके साथ न रहें।

चींटियों को चीनी देने वाले और इंसानों को बिना पानी के मारने वाले लोग पाखंडी हैं, उनके साथ न रहें।

आज तक तेरी सत्ता में था!!

तुमने खूब की प्रताड़ना!!

पाँच सौ लोग बड़े आराम से बैठ सकें इतना वह मंच विशाल था। मंच पर समता के झंडे फहर रहे थे। सभी श्रोता भाषण अच्छी तरह सुन सकें इसलिए माइक्रोफोन लगाए गए थे।

सुबेदार विश्वाम सवादकर जी अपने समता सैनिक दल के 500 सैनिकों के साथ मंडप में सारी व्यवस्था चाक-चौबंद रखने के लिए तैयार खड़े थे। समता सैनिक दल का एक बैंड भी था। श्री बाबूराव पवार ने परिषद के लिए खास पुणे से पेंशनर मिलिट्री वालों का एक और बैंड मंगवाया था।

सम्मेलन का समय शाम 7 बजे का था। लेकिन शाम के चार बजे से ही प्रतिनिधि और प्रेक्षकों के 30 से 35 हजार के जमावड़े से मंडप पूरी तरह भर गया था। इस परिषद के लिए हर जिले से महार नेता अपने-अपने जिले के लोगों के साथ आए हुए थे। सातारा जिले से मे. बलवंत सदाशिव सावंत, पिराजी संभाजी खरात, आर. एन. नलवडे, गणेश हरी खरात, नासिक जिले से श्री भाऊराव गायकवाड, अमृतराव रणखांबे, श्री. दाणी, टी. एस. काले, पुंजाजी जाधव, कोलाबा जिले से बाबूराव माणगांवकर, गणपतबुवा जाधव, कुडवलकर, गोविंदराव वर्खरकर, पुणे से मधाले, सुबेदार घाटगे, भोसले, बाबूराव पवार, नानासाहेब वाघमारे, नाथा महाराज (भंगी), शांताराम उपशाम, कर्नाटक से बलवंतराव वराले, ए. के. मालगे, मार्तंडराव जोतीराव रावण, सोलापुर से एन. टी. बनसोडे, जिवप्पा ऐलेले, उद्धव घोंडे शिवशरण, बाबुजी सर्वोगौड़, केशव रामचंद्र जाधव, माधवडे, हैदराबाद संस्थान के ग. नी. गायकवाड, कांबले, पवार, अहमदनगर के पी. जी. रोहम, सूर्यवंशी, शंकरराव सालवी, ठाणे जिले के शिवराम गोपाल जाधव, बी. वी. दांडे, भाऊ हरी पंडित, दामोदर हरी वर्धस्कर, बी. डी. खंडे, खानदेश पूर्व के नेता दौलतरावजी जाधव, त्रिंबक सेनू भालेराव, कालू विदू तापरे, लक्ष्मण पा. मेढे, नथुरामजी लोखंडे, जननाथ खंडोजी बडो, कालोजी तापरे, मोतीराम रावजी लोखंडे, मिकन गणुजी मेहरे, शिवा रघुनाथ भास्कर, धर्माजी आबाजी बारसून, पश्चिम खानदेश से पुंडलिक तुकाराम बोराले, बी. टी. जाधव, महादेव गणेश ऐलेले, सदाशिव लक्ष्मण गायकवाड, तुलजाराम भिकाजी तलमंडोरे, लक्ष्मणराव गायकवाड, लक्ष्मणराव गजभिए, किसनराव वाघमारे, पाटोले, मुंबई के शिवतरकर मास्टर, सालवी, बोरवराकर, बनमाली, सोलंकी, वालिंजकर, शंकरराव वडवलकर, जनाबाई मोरे, सतुबाई सयाजी डाबरे, भागीरथीबाई तांबे, अनुसयाबाई हवाल, राजुबाई लक्ष्मणराव गायकवाड, मिसेज सवादकर, बी. एस. सावंत, पी. एल. लोखंडे, पोलादपुर सुबे. के. बी. टी. तांबे, रत्नागिरी के भुसारकरखुवा, मोहिते मास्टर, रामा भोले, अर्जुनराव सालवी, जी. ओ. सी. जंजीरा संस्थान के महादेव खेरे, भोर संस्थान के गायकवाड, भालेराव, सांगली संस्थान से कांबले, मोरे, जत संस्थान के ऐताले, अक्कलकोट के जाधव, जवर संस्थान के पवार, गायकवाड, जमखंडी के चांचाये, खेमसाडे, औंध संस्थान के थोटे, इंदौर से नागनाथ गोले, मह. से श्री लोखंडे, करजत के श्री. हरिद्र कोकीलनकर दिवंगत नागनाथ कांबले, राय बहादुर उदले, बनसाराव माणगांवकर, आर. एन. अंडगाले, जी. एस. बाराले, दादा पगारे मास्टर, राठोडे, संभाजी तुकाराम गायकवाड, चांगदेव नारायण मोहिते, बाबाजी शिंदे, रामचंद्र वाघचौरे, सोनू सजनाजी संदीरकर आदि। मुंबई इलाके के सभी जिलों से तथा संस्थानों से नेता लोग अपने-अपने जिले के लोगों के साथ परिषद के लिए हाजिर हुए थे। इसके अलावा परिषद के लिए देवदत्त नारायण तिलक, देवराव नाईक, डी. वी. प्रधान, डॉ. मिसेज चंपूताई प्रधान, दत्तोपंत देशपांडे, बाबूजी कवली, अस्सपीकर वकील, वैद्यक वकील, बी. कद्रेकर, एम. के. कार्मिक, एडवोकेट पाध्ये, पी. जी. काणेकर, बापूसाहेब सहस्रबुद्धे, अनंत हरी गदे, बं. समर्थ, भास्करराव जाधव, कमलाकांत चित्रे, अनंतराव चित्रे, गोपीनाथ प्रधान, शांताराम पोटनीस, सुरेंद्रनाथ टिपणीस आदि लोग तथा सिख समाज के सरदार ईश्वरसिंह, दरबारसिंह, केहरसिंह, अमरसिंह आदि सिख नेता अपने सिख बंधुओं के साथ हाजिर थे।

परिषद में उपस्थित होने के लिए शाम 6.30 बजे अध्यक्ष व्यंकट राव और डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर समता सैनिक दल के गार्ड ऑफ ऑनर से सलामी लेते हुए मंडप के

अंदर दाखिल हुए। उनके सम्मेलन स्थल पर पहुँचते समय उनके नाम का जयघोष हो रहा था, जो उनके कुर्सी पर विराजमान होने तक चलता रहा। शुरुआत में स्वागत पद्य गायन हुआ। इसके पश्चात स्वागताध्यक्ष रेवजीबुवा उर्फ दादासाहेब डोलेस का भाषण हुआ।

स्वागताध्यक्ष दादासाहेब डोलेस के भाषण के बाद पुणे के नेता श्री. राजाराम भोले ने अध्यक्ष से अध्यक्ष स्थान स्वीकारने की विनती की। उसे नासिक के नेता श्री. भाऊराव गायकवाड ने तथा श्री चांगदेव मोहिते और सुभेदार घाटगे ने समर्थन दिया। और उसके बाद अध्यक्ष स्थानापन्न हुए। उसके बाद संभाजीराव गायकवाड ने उन्हें पुष्पहार अर्पण किया। उसके बाद परिषद के सचिव दिवाकर पगारे ने विभिन्न स्थानों से आए संदेश पढ़कर सुनाए। उसमें रावजी डेंगे, रावसाहेब पापण्णा और सरदार केहरसिंह से आए संदेश प्रमुख थे। सभी संदेशों में धर्मांतरण की घोषणा का समर्थन किया गया था और प्रोत्साहन दिया गया था।

नियोजित अध्यक्ष श्री. वेंकटराव भाषण करने के लिए उठ खड़े हुए तो तालियों की मानो गड़गड़ाहट हुई। बुलंद आवाजों में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर और वेंकटराव के नामों की जयकार हुई। जयकार की ध्वनि रुकी तो अध्यक्ष वेंकटराव ने हिंदी में भाषण किया।

सम्मेलन में पारित किए गए प्रस्ताव

प्रस्ताव 1-

(अ) मुंबई इलाके की महार जाति की परिषद पूरी तरह सोच-विचार के बाद यह घोषित करती है कि महार जाति को समाज में समता और आजादी पाने के लिए धर्म परिवर्तन करना ही एकमात्र उपाय सही लगता है। इसीलिए परिषद अपने एकमात्र नेता डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर को निश्चयपूर्वक सार्वजनिक रूप से आश्वासन देती है कि महार समाज पूरे समुदाय के साथ धर्म परिवर्तन के लिए तैयार है।

(ब) महार परिषद की सूचना है कि, धर्म परिवर्तन की पूर्वतैयारी के अंतर्गत महार लोग हिंदू देवताओं की पूजा न करें, हिंदुओं के त्योहार-व्रत-उपोषण आदि का पालन न करें, हिंदुओं के किसी भी उत्सव में हिस्सा न लें और तीर्थयात्रा पर न जाएँ।

यह प्रस्ताव नासिक के प्रसिद्ध नेता श्री भाऊराव कृष्णराव गायकवाड ने रखा। उनके इस प्रस्ताव का समर्थन किया धारवाड़ के श्री. एस. एस. वराले ने। उन्होंने इस संदर्भ में अपने विचार प्रकट किए। इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए अहमदनगर के श्री. पी. जे. रोहम, जनाबाई मोरे, कु. राजुबाई गायकवाड, सौ. सोनुबाई डाबरे, कु. भागीरथीबाई तांबे, कुलाबा के प्रमुख नेता श्री. विश्वाम गंगाराम सवादकर के भाषण हुए।

पहले हफ्ते में हुए सम्मेलन

30 मई से 2 जून, 1936 तक मुंबई के दादर-नायगांव इलाके में हुई अस्पृश्य बंधुओं की परिषद ने बड़ी हलचल मचा दी। मुंबई इलाका महार परिषद के लिए दादर में प्रचंड मंडप खड़ा किया गया था। इस मंडप को स्व. रमाबाई उर्फ मांसाहेब भीमराव अम्बेडकर नगर का नाम दिया गया था। इसके अलावा जिन प्रमुख शहरों के अस्पृश्यों ने अपने स्वाभिमान के, अपनी आत्मनिर्भरता के और समानता के अधिकारों के लिए पिछले कई सालों से आर-पार की टक्करें दी थीं, उन महाड़ और नासिक के सत्याग्रह की याद में मंडप के दो दरवाजों का नामकरण नासिक दरवाजा और महाड़ दरवाजा किया गया था।

ऐसे नयनमनोहारी और भव्य मंडप में मुंबई इलाका शहर परिषद का अधिवेशन बड़े उत्साह के साथ और सफलता से संपन्न हुआ। इस परिषद के अध्यक्ष स्थान पर थे मे. बी. एस. वेंकटराव उर्फ हैदराबाद के अम्बेडकर! इस कारण परिषद काफी प्रसिद्ध रही।

यह परिषद मुंबई इलाके के लिए थी, इसके बावजूद मध्य प्रांत, वर्हाड़, इंदौर, महू, हैदराबाद आदि अन्य प्रांतों से प्रमुख नेता इस परिषद के लिए हाजिर थे। मुंबई में अस्पृश्य समाज के महार बंधुओं की यह प्रचंड परिषद देख कर सवर्ण लोगों के दृष्टिकोण में जरूर परिवर्तन आने थे। महार समाज के हर व्यक्ति ने इस परिषद में अपनत्व से हिस्सा लेकर डॉ. अम्बेडकर पर अपना प्रेम व्यक्त किया था। परिषद के लिए आए हजारों महार बंधुओं का अनुशासन तारीफें काबिल था। इस परिषद का पूरा प्रबंधन सुचारु रूप से चलाने के लिए समता सैनिक दल ने जो भूमिका निभाई थी वह विशेष उल्लेखनीय थी।

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने इस परिषद को सफल बनाने के लिए दिन-रात मेहनत की थी। निमंत्रित प्रतिनिधियों को, मेहमानों को किसी तरह की कोई दिक्कत पेश न आए, इसके लिए खास प्रबंधकों ने हर बात का ख्याल रखा था। इस सम्मेलन के आयोजन में अस्पृश्य वर्ग के नेता डॉ. पी. जी. सोलंकी ने भी डॉ. अम्बेडकर की खूब मदद की। इस परिषद में भाग लेने वाले प्रमुख लोगों में थे - मे. भास्करराव जाधव, सेठ शंकरराव परशा, पी. आर. लेले, पी. जी. अत्रेकर, डॉ. सोलंकी, अमृतराव रणखांबे, भाऊराव गायकवाड, एडवोकेट पाध्ये, बै. समर्थ, सौ. वत्सलाबाई शेणपाकर, सौ. वेदक, सौ. डॉ. चंपूताई प्रधान, देवराव नाईक, अनंतराव चित्रे, बापूसाहेब सहस्रबुद्धे, सुरेंद्रनाथ टिपणीस, नागपुर से मेप्राम, एम. के. कार्मिक, एल.

एन. हरदास, सेठ मनियार आदि।

सोमवार दिनांक 1 जून, 1936 के दिन सुबह डॉ. अम्बेडकर साहब की अध्यक्षता में मुंबई संत समाज की परिषद हुई। उस समय स्वागताध्यक्ष श्री. शंकर नारायणदास बर्वे का प्रभावी भाषण हुआ। अध्यक्ष के नाते डॉ. अम्बेडकर ने जो भाषण दिया, उसके कारण संत समाज के हृदय में हलचल मच गई। जैसे कि पहले ही तय किया गया था, सैकड़ों संतों ने अपनी दाढ़ी-मूँछ, जटाएँ, मालाएँ अग्निकुंड में अर्पण कीं। रात डॉ. अम्बेडकर की अध्यक्षता में राजनीतिक परिषद हुई। उस वक्त उन्होंने नए सुधार कैसे लाएँ और नए कायदे कौंसिल के चुनाव कैसे लड़े जाएँ इसके बारे में बेहद प्रभावी भाषण दिया।

सम्मेलन में गायन का कार्यक्रम

परिषद के कार्यक्रमों में ईश्वरस्तवन, स्वागत और आभार के गीत लड़कियों ने बड़े मधुर स्वर में पेश किए और लोगों का मनोरंजन किया। उनके नाम हैं-

कु. कमलाबाई अमृतराव रणखांबे
पार्वतीबाई बलिराम पंडित
शांताबाई बलिराम नेवालकर
गोदावरी महादेव रोकड़े
मनोरमा बलिराम भातनकर
कुसुम लक्ष्मण जाधव
चांगुणाबाई भागोजी कांबले
प्रेमाबाई चरणदास गायकवाड

में नामदेव महादेव सुर्वे (पेटी वादन, हार्मोनियम), शंकर अर्जुन सोनावणे (तबला), हिराजी रामचंद्र आंबेकर (दिलरुबा), महादेव पायरकर (सितार) आदि लोगों ने विभिन्न वाद्यों के बजाने में अपनी महारत दिखा दी जो काबिले तारीफ थी।

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर का भाषण

अखिल मुंबई इलाका महार परिषद में 31 मई, 1936 के दिन डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने भाषण किया। परिषद को संबोधित करते हुए वे बोले,

''सज्जनों, भाइयों एवं बहनों,

आप जान ही गए हैं कि यह परिषद खास कर धर्म परिवर्तन संबंधी मेरी घोषणा पर विचार करने के लिए बुलाई गई है। धर्म परिवर्तन का विचार मेरे दिल के बहुत करीब है। इतना ही नहीं, आप सभी लोगों का भविष्य उसके साथ जुड़ा होने के कारण यह विषय मुझे बेहद महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है। इस कारण यह लोग भी जान गए हैं, ऐसा कहने पर किसी को आपत्ति नहीं होगी। अगर यह सच न होता तो आप आज इतनी बड़ी संख्या में यहाँ इकट्ठे न होते। इसीलिए आप सब लोगों को यहाँ इकट्ठा देख कर मुझे बेहद खुशी हो रही है।

सम्मेलन की आवश्यकता

आप सबने सुना ही होगा कि, धर्म परिवर्तन की घोषणा के बाद कई जगहों पर छोटी-बड़ी सभाओं का आयोजन कर अपने लोगों ने इस विषय पर अपना मत व्यक्त किया है। लेकिन सब एक जगह इकट्ठा होकर सोच-विचार कर धर्म परिवर्तन के सवाल पर निर्णयात्मक चर्चा करने का अब तक हमें कोई मौका उपलब्ध नहीं हुआ था। ऐसा अवसर उपलब्ध होने की आपसे अधिक मुझे जरूरत थी। एक बात आप सब मानेंगे कि धर्म परिवर्तन की मुहिम सफल हो इसके लिए पहले से तैयारी करना बहुत ही आवश्यक होता है। धर्म परिवर्तन करना कोई बच्चों का खेल नहीं। धर्म परिवर्तन मौज-मजे की बात भी नहीं है। यह इंसान के जीवन की सफलता से संबंधित है। जहाज से एक बंदरगाह से दूसरे बंदरगाह तक की यात्रा करने के लिए जितनी तैयारी की जरूरत होती है, उतनी ही तैयारी धर्म परिवर्तन के लिए करनी पड़ेगी। उसके बगैर इस किनारे से उस किनारे तक पार लग पाना संभव नहीं है। लेकिन नाव में कितने यात्री आ रहे हैं, इसका अंदाजा लगने तक नाविक सामान इकट्ठा करने की तैयारी में नहीं लगता। मेरी हालत भी कुछ-कुछ इसी तरह की है। कितने लोग धर्म परिवर्तन के लिए तैयार हैं इसका अंदाजा जब तक नहीं आता तब तक मेरे लिए धर्म परिवर्तन की पूर्व तैयारी करने का काम शुरू करना असंभव है। अपने लोगों की कहीं परिषद का आयोजन किए बगैर लोगों के मतों का अंदाजा लग पाना संभव नहीं था। लोगों के मत आजमाने का अवसर मुझे मिलना चाहिए, ऐसा मैंने जब मुंबई के कार्यकर्ताओं से कहा तब खर्च या मेहनत का बहाना आगे किए बिना परिषद का आयोजन करने की जिम्मेदारी खुशी-खुशी अपने ऊपर ले ली। वह जिम्मेदारी पार लगे, इसके लिए उन्हें क्या-क्या कष्ट उठाने पड़े, इस बारे में आपके परमपूज्य नेता और स्वागत समिति के अध्यक्ष राजमान्य राजश्री रेवजी दागुजी डोलेस ने अपने भाषण में सविस्तार सुनाया है। इतने कष्ट उठा कर उन्होंने मेरे लिए इस सभा का आयोजन किया, इसके लिए मैं परिषद की स्वागत समिति का अत्यंत आभारी हूँ।

केवल महारों का ही सम्मेलन क्यों?

हो सकता है कुछ लोग यह पूछते हुए इस परिषद पर आपत्ति जताएँ कि, धर्म परिवर्तन की मेरी घोषणा अगर सभी अस्पृश्यों के लिए है, तो फिर सभी अस्पृश्यों की सभा के बदले केवल महारों की ही सभा क्यों बुलाई गई? जिन सवालों के बारे

में इस परिषद में हमें चर्चा करनी है, उन प्रश्नों पर चर्चा शुरू करने से पहले इस सवाल का जवाब देना मुझे आवश्यक लगता है। महारों की सभा ही क्यों बुलाई, सभी अस्पृश्यों की सभा क्यों नहीं बुलाई, इसकी कई वजहें हैं। पहली वजह यह है कि इस परिषद में किसी भी तरह की कोई माँग नहीं रखनी है। सरकार से किसी तरह का राजनीतिक अधिकार नहीं माँगने हैं और न ही हिंदुओं से कुछ सामाजिक अधिकार माँगने हैं। अपने जीवन का क्या करना है, अपने जीवन की कैसी रूपरेखा बनानी है, केवल यही एक सवाल इस परिषद के सामने है। यह प्रश्न ऐसा है जिसे हर जाति अपने स्तर पर हल कर सकती है और हर जाति इसे अपने स्तर पर अलग से सोच-विचार कर हल करे, यही ठीक है। जिन कारणों से सभी अस्पृश्य जातियों को एक साथ परिषद लेने की आवश्यकता मुझे महसूस नहीं हुई, उनमें से यह एक प्रमुख वजह है। केवल महारों की ही परिषद बुलाने की एक और वजह भी है। धर्म परिवर्तन की घोषणा के लिए अब आठ-दस माह का समय बीत चुका है। इस दौरान लोकजागृति का ज्यादातर काम हो चुका है। अब जनमत आजमाने का समय आ गया है, ऐसा मुझे लगता है। जनमत परखने का एक सादा और आसान साधन परिषद लेना है, ऐसा मुझे लगता है। धर्म परिवर्तन को प्रत्यक्ष में लाने के लिए जो कोशिशें करना जरूरी हैं, उन पर अमल करने से पहले इस बारे में लोगों का क्या मत है, यह परखना मुझे जरूरी लगता है। मेरा ऐसा भी विचार है कि अस्पृश्यों की सर्वसाधारण सभा बुला कर ली गई राय से विभिन्न जातियों की अलग सभाएँ लेकर परखी गई राय, अधिक विश्वास करने योग्य होगी। क्योंकि सभी अस्पृश्यों की सभा कह कर बुलाई जाने के बावजूद भी वह सभी अस्पृश्यों की प्रतिनिधिक सभा शायद ही हो पाती। जनमत के बारे में विश्वासपूर्ण तरीके से पता लगाया जा सके इसलिए महारों की अलग से सभा बुलाई गई। इस सभा में अन्य जातियों को बुलाया नहीं गया, इसलिए उनका नुकसान होने वाला नहीं है। अगर वे धर्म परिवर्तन नहीं करना चाहते तो उन्हें इस सभा में आमंत्रित न किए जाने के बारे में दुखी नहीं होना चाहिए। वे अगर धर्म परिवर्तन करना चाहते हैं, तो इस सभा में बुलाया नहीं गया, इसलिए उनके निर्णय में किसी तरह का कोई अड़ंगा नहीं खड़ा होगा। महार लोगों की जिस तरह की सभा ली जा रही है उसी तरह की सभा हर जाति ले और उसके जरिए अपनी जाति के लोगों का मत आजमाने की कोशिश करे, लोगों को अपना मत व्यक्त करने का अवसर दे। मैं उन सभी जातियों को सूचित करता हूँ कि इस काम में उन्हें जिस किसी तरह की मदद की जरूरत होगी, वह देने के लिए मैं तैयार हूँ। अब तक जो कुछ भी मैंने कहा, वह केवल विषय की प्रस्तावना हुई। अब मैं आज की सभा के प्रमुख विषय पर आ जाता हूँ।

धर्म परिवर्तन के ऐहिक कारण

धर्म परिवर्तन के बारे में दो तरह से विचार किया जाना जरूरी है। सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण से विचार करना आवश्यक है। इस पर ऐहिक दृष्टिकोण से सोचा जाना चाहिए और सैद्धांतिक दृष्टिकोण से भी सोचा जाना चाहिए। लेकिन किसी भी दृष्टिकोण से धर्म परिवर्तन के बारे में सोचना हो तो भी पहले यह जान लेना जरूरी हो जाता है कि अस्पृश्यता क्या चीज है? और उसका असली रूप क्या है? इस बारे में पूरी तरह समझे बगैर मेरी धर्म परिवर्तन की घोषणा को आप समझ नहीं पाएँगे। अस्पृश्यता का मतलब क्या है और उसका असली स्वरूप क्या है, इसके बारे में आप समझें इसके लिए सबसे पहले आप पर हो रहे अत्याचार के बारे में आपको याद दिलाना जरूरी है। सरकारी स्कूलों में बच्चों को दाखिला दिलाने का हक बताकर उन्हें एक कुएँ से पानी भरने का हक माँगने पर, बारात में घोड़े पर बैठ कर जाने के अधिकार का प्रयोग करने पर सवर्ण हिंदुओं के द्वारा पीटे जाने के उदाहरण आपके साथ घटित होते रहते हैं। ये सब बातें आपके सामने घटती हैं इसलिए आप इनके बारे में जानते हैं। लेकिन मारपीट की ऐसी कई वजहें हैं, जिनका जिक्र सुनकर भारत के बाहर के लोगों को आश्चर्य लग सकता है। महंगे कपड़े पहनने के कारण लोगों के साथ मारपीट की जाती है, गहने पहनने के कारण मारपीट की जाती है, पानी लाने के लिए ताँबे-पीतल के बर्तन इस्तेमाल करने के कारण मारपीट की जाती है, मरे हुए जानवर खींच कर न ले जाने के कारण, मरे हुए जानवरों का मांस न खाने के कारण मारपीट किए जाने के उदाहरण दिए जा सकते हैं। पैरों में जूते-जुराबें पहनकर गाँव में घूमने इसलिए, सामने आए हिंदू व्यक्ति को जोहार न बजाने के कारण, शौच के लिए जाते समय लोटे में पानी लेकर जाने के कारण पीड़ा पहुँचाई जाने के उदाहरण भी बताए जा सकते हैं। पंक्तियों की पंगत में रोटी परोसने के कारण मारपीट किए जाने की घटना हाल ही में घटी है। इन सब तरह के जुल्मों की ओर अपने को अमानुष तरीके से सताए जाने के कई उदाहरण आपने सुने होंगे, आपमें से कईयों ने उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव भी किया होगा। मारपीट करना जहाँ संभव नहीं होता, वहाँ बहिष्कृत करने के शस्त्र का आप पर उपयोग किए जाने की बात भी आप जानते होंगे। मोलमजूरी मिलने नहीं देना, जंगल से जानवरों को गुजरने नहीं देना, लोगों को गाँव में आने नहीं देना, आदि सभी तरह की पाबंदियाँ लगा कर सवर्ण हिंदुओं से आप लोगों को परेशान किए जाने की बात आपमें से कईयों को याद होगी। लेकिन, ऐसा क्यों होता है? इसके पीछे क्या वजह है? इस बारे में मेरे मत में आपमें से बहुत कम लोग

जानते होंगे। उसे जानना मेरे मत में बहुत आवश्यक है।

यह वर्गकलह की बात है

ऊपर कलह/विवाद के जो उदाहरण दिए हैं उनका व्यक्ति के गुणावगुणों से कोई संबंध नहीं है। वह दो खलनायकों के बीच का कलह भी नहीं है। अस्पृश्यता वर्गकलह का प्रश्न है। सवर्ण और अस्पृश्य इन दो समाजों के बीच का वह विवाद है। यह किसी व्यक्ति पर किए गए आरोपों से उद्‌भूत कलह नहीं है। किसी एक व्यक्ति के प्रति हो रहे अन्याय की भी यह कलह नहीं है। एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के साथ की हुई ज्यादती से संबंधित यह कलह है। यह वर्गकलह सामाजिक दर्जे के बारे में है। एक वर्ग को दूसरे वर्ग के साथ कैसे बरताव करना चाहिए इस बारे में यह विवाद है। ऊपर जो उदाहरण दिए हैं, उनसे इस कलह के बारे में जो बात साफ तौर पर सामने आती है, वह यह है कि ऊँचे वर्ग के साथ पेश आते समय आप हमेशा बराबरी से पेश आने का आग्रह करते हैं। इसीलिए यह कलह पैदा होती है। अगर ऐसा नहीं होता तो रोटी खाने से, ऊँची पोशाक पहनने से, जनेऊ धारण करने से, पीतल-ताँबे के बर्तनों में पानी लाने से, घोड़े पर बारात लेकर जाने से, यह झगड़े नहीं होते। जो अस्पृश्य चपाती खाता है, ऊँचे वस्त्र परिधान करता है, ताँबे के बर्तन इस्तेमाल करता है, घोड़े पर बैठ कर बारात लेकर जाता है वह ऊँचे वर्ग के किसी का नुकसान नहीं करता। इन सब बातों के लिए अपने ही पैसे खर्च करता है। ऐसा अगर है तो ऊँचे वर्ग को उसके बारे में बुरा क्यों लगता है? इस गुस्से का कारण एक ही है, वे मानते हैं कि इस तरह का सम्मान वर्ग उनकी मानहानि का कारण है। आप निम्न हैं, अपवित्र हैं, अपात्र हैं। आप अगर तमीज का जीवन बिताएँगे, तभी वे आपको सुख से रहने देंगे। अपनी औकात से बढ़ कर बर्ताव करने पर ही तो कलह की शुरुआत होती है, यह बात निर्विवाद सत्य है।

इस उदाहरण से एक और बात साबित होती है कि अस्पृश्यता रोजमर्रा की बात है, नैमित्तिक या कभी-कभार की बात नहीं। साफ तौर पर कहना हो तो सवर्ण और अस्पृश्य के बीच कलह रोजमर्रा की है, और वह हमेशा, त्रिकालाबाधित रहने वाली है। क्योंकि जिस धर्म के कारण आपको निचला दर्जा दिया गया है, वह धर्म ऊँचे वर्ग के कथनानुसार सनातन है। समय के अनुसार उसमें किसी भी तरह का बदलाव होना असंभव है। आज आप जिस तरह निम्न वर्ग के हैं, उसी तरह आपको हमेशा निम्न वर्ग के बन कर रहना होगा। इसका मतलब यही है कि सवर्ण और अस्पृश्य के बीच का यह कलह/विवाद हमेशा ऐसा ही रहने वाला है। इस कलह के साथ आप कैसे निपटेंगे, यह असली समस्या है। इस प्रश्न के बारे में सोचने के अलावा आपके सामने कोई चारा नहीं है, ऐसा मुझे लगता है।

आप में से जिन लोगों को, हिंदू लोग जैसे आपके साथ बर्ताव करेंगे उसी के अनुसार रहना है, उनकी सेवा करते हुए जीना है, उन्हें इस बारे में सोचने की जरूरत नहीं है। लेकिन जिन्हें स्वाभिमान के साथ जीवन यापन करना आवश्यक लगता है, जिन्हें समता के साथ जीना आवश्यक लगता है, उनके सामने इन सवालों के बारे में सोचने के अलावा कोई चारा नहीं है। उन्हें इस बात पर सोचना पड़ेगा कि इस कलह से हम अपना बचाव कैसे कर सकते हैं? इस सवाल को हल करना मुझे बहुत कठिन नहीं लगता। यहाँ एकत्रित हुए आप सभी लोगों को एक बात माननी होगी और वह यह कि जिसके हाथ में ताकत/सामर्थ्य होता है, जय/जीत उसी की होती है। जिसके पास ताकत/सामर्थ्य नहीं उसे सफलता पाने की आशा नहीं रखनी चाहिए। यह बात सबके अनुभव से साबित हुई है। उसके समर्थन में सबूत देने की जरूरत नहीं है।



डॉ. आंबेडकर के 135वें जयंती महोत्सव में सामाजिक न्याय, धम्म और आंबेडकरवादी चेतना पर हुआ विमर्श

– मनोहर लाल 'प्रेमी', मंडल संवाददाता
लखनऊ मंडल, 12 अप्रैल 2026

आंबेडकर महासभा आयोजन समिति, उत्तर प्रदेश (पंजीकृत) एवं डॉ. आंबेडकर बहुजन विकास समिति (पंजीकृत) के संयुक्त तत्वावधान में डॉ. भीमराव आंबेडकर का 135वाँ जयंती महोत्सव दिनांक 12 अप्रैल 2026 को सेक्टर ई-7, ट्रिनिटी स्कूल के निकट, हरदोई रोड, दुबग्गा, लखनऊ में गरिमापूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ अधिवक्ता एस.पी. सुमन एडवोकेट, हाईकोर्ट, लखनऊ ने की।



कार्यक्रम का आरम्भ भिक्खु करुणानन्द एवं भिक्खु दीपांकर द्वारा दीप प्रज्वलन तथा त्रिशरण-पंचशील पाठ के साथ किया गया। तत्पश्चात भिक्षु करुणानन्द जी ने उपस्थित धम्म उपासक-उपासिकाओं को धम्म देशना प्रदान करते हुए तथागत बुद्ध के करुणा, प्रज्ञा और समता पर आधारित धम्म संदेश को विस्तार से प्रस्तुत किया।

कार्यक्रम में आमंत्रित सम्मानित अतिथियों का मंचासीन कर उनका अभिनंदन एवं सम्मान किया गया। प्रमुख वक्ताओं में प्रोफेसर टी.पी. राही (लखनऊ विश्वविद्यालय), डॉ. योगेन्द्र सिंह (राजकीय पी.जी. कॉलेज, महमूदाबाद, सीतापुर), हीरालाल विद्यार्थी (बौद्धाचार्य एवं सामाजिक चिंतक), देवचंद्र भारती 'प्रखर' (संपादक, आंबेडकरवादी साहित्य पत्रिका) तथा डॉ. आलोक यादव शामिल रहे।

अपने संबोधन में प्रोफेसर टी.पी. राही ने डॉ. आंबेडकर के सामाजिक न्याय, शिक्षा और लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित मिशन की समकालीन प्रासंगिकता को रेखांकित किया। डॉ. योगेन्द्र सिंह ने सामाजिक परिवर्तन और संवैधानिक चेतना के महत्व पर प्रकाश डाला। श्रद्धेय हीरालाल विद्यार्थी ने बुद्ध और आंबेडकर के विचारों के अंतर्संबंधों को स्पष्ट करते हुए समतामूलक समाज निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया।

कार्यक्रम के विशिष्ट वक्ता देवचंद्र भारती 'प्रखर' ने आंबेडकरवादी चिंतन, साहित्य और सामाजिक चेतना के प्रश्नों पर अपना विचार व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि आंबेडकरवाद मनुष्य को हीनताबोध से मुक्त कर स्वाभिमान, समता और





संवैधानिक चेतना की भूमि पर स्थापित करता है। अपने वक्तव्य में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि ''दलित व्यक्ति सही मायने में आंबेडकरवादी नहीं होता और आंबेडकरवादी व्यक्ति कभी दलित नहीं होता।'' उन्होंने इस कथन की व्याख्या करते हुए कहा कि आंबेडकरवाद का उद्देश्य मनुष्य को पीड़ित पहचान में स्थायी रूप से बाँधना नहीं, बल्कि उसे आत्मसम्मान, संगठन, शिक्षा और सामाजिक नेतृत्व की दिशा में अग्रसर करना है।



कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण आकर्षण साहित्यकार मनोहर लाल 'प्रेमी' की प्रकाशित पुस्तक ''हम दलित नहीं'' का लोकार्पण रहा। सभी सम्मानित अतिथियों की गरिमामयी उपस्थिति में पुस्तक का विमोचन सम्पन्न हुआ। वक्ताओं ने पुस्तक को पहचान, स्वाभिमान और आंबेडकरवादी चेतना के प्रश्न पर एक महत्वपूर्ण वैचारिक हस्तक्षेप बताया। पुस्तक के प्रतिपाद्य पर उपस्थित जनसमूह के मध्य सार्थक संवाद भी हुआ।



कार्यक्रम में स्थानीय छात्र–छात्राओं द्वारा उत्कृष्ट सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ दी गईं, जिन्हें उपस्थित दर्शकों ने अत्यंत सराहा। भाषण प्रस्तुत करने वाले विद्यार्थियों में इच्छिता, कृष्वी, अनुप्रिया, दिव्यांशी, शिवांश सिंह एवं विधि प्रमुख रहीं। गीत एवं सांस्कृतिक प्रस्तुतियों में सिद्धार्थ सम्यक बौद्ध, समीक्षा, समृद्धि, आराध्या विद्यार्थी, अद्विका सिंह, विवान सिंह, अथर्व तथा अभिनव ने उल्लेखनीय सहभागिता की। सांस्कृतिक









कार्यक्रम के अंतर्गत गायक कलाकार संजीव कुमार द्वारा प्रस्तुत गीतों को भी श्रोताओं ने विशेष रूप से सराहा।

समारोह में विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय उपलब्धि प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को सम्मानित किया गया। कृति गौतम सुपुत्री महेन्द्र पाल सिंह एवं सावित्री गौतम को प्रथम प्रयास में पी.सी.एस. परीक्षा उत्तीर्ण करने पर विशेष सम्मान प्रदान किया गया। इसी प्रकार कार्यक्रम हेतु सर्वाधिक आर्थिक सहयोग (6000) प्रदान करने के लिए उपासिका बिन्दू जी को भी विशेष सम्मान से सम्मानित किया गया।



कार्यक्रम का संचालन इंजीनियर गोवर्धन लाल ने किया। उन्होंने पूरे आयोजन को प्रभावी, अनुशासित और सारगर्भित ढंग से संचालित करते हुए सभी वक्ताओं एवं प्रतिभागियों के विचारों का समन्वय किया।

समारोह में डॉ. आंबेडकर बहुजन विकास समिति के पदाधिकारी एवं सदस्य सक्रिय रूप से उपस्थित रहे। समिति के संरक्षक इंजीनियर गोवर्धन लाल, अध्यक्ष इंजीनियर आर.सी. प्रभाकर, उपाध्यक्ष के.एल. गौतम एवं अशोक कुमार, महासचिव मनोहर लाल 'प्रेमी', कोषाध्यक्ष मिथिलेश कुमारी, संयुक्त सचिव संजीव कुमार, संगठन सचिव चन्द्रपाल, मीडिया प्रभारी गौतम कुमार तथा विधिक सलाहकार प्रकाश नारायण चौधरी एवं अशर्फी लाल वर्मा, लेखा परीक्षक एन. एल. कोठारी सहित अन्य पदाधिकारियों एवं सदस्यों ने आयोजन को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।



कार्यक्रम में उपस्थित सभी अतिथियों को स्मृति–चिह्न प्रदान कर सम्मानित किया गया। समारोह सौहार्दपूर्ण, प्रेरणादायी एवं वैचारिक ऊर्जा से परिपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। उपस्थित जनसमूह ने डॉ. आंबेडकर के विचारों, बुद्ध के धम्म तथा संवैधानिक मूल्यों को जन–जन तक पहुँचाने और समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व एवं न्याय पर आधारित समाज निर्माण हेतु निरंतर कार्य करने का संकल्प व्यक्त किया।



वैशाखी पूर्णिमा की पूर्व संध्या पर गूँजा बुद्ध और आंबेडकर का संदेश

– मनोहर लाल 'प्रेमी', मंडल संवाददाता

कुकुही, बालामऊ (हरदोई), 30 अप्रैल 2026

विश्वगुरु तथागत बुद्ध की त्रिविध पावन वैशाखी पूर्णिमा के पावन पर्व की पूर्व संध्या पर कुकुही, बालामऊ में बुद्ध, आंबेडकर जयंती समारोह का भव्य आयोजन किया गया। कार्यक्रम का आयोजन अखिल भारतीय बौद्ध एसोसिएशन के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ। समारोह में क्षेत्र के बुद्धिजीवियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, धम्मानुयायियों तथा युवाओं की उल्लेखनीय सहभागिता रही।



कार्यक्रम की अध्यक्षता परम श्रद्धेय भिक्खु डॉ. स्वरूपानंद (अध्यक्ष, पाली सोसायटी ऑफ इंडिया, वाराणसी) ने की। मुख्य धम्म–उपदेशक के रूप में श्रद्धेय भिक्खु करुणानंद ने उपस्थित जनसमूह को संबोधित करते हुए तथागत बुद्ध के धम्म, करुणा, प्रज्ञा और सामाजिक समता के संदेश को विस्तार से प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि बुद्ध का धम्म केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि मानव जीवन को विवेक, मैत्री और नैतिकता के आधार पर संचालित करने की जीवन–पद्धति है।

समारोह में डॉ. भीमराव आंबेडकर के जीवन, संघर्ष और सामाजिक मिशन पर भी विस्तार से चर्चा हुई। वक्ताओं ने कहा कि डॉ. आंबेडकर ने भारतीय समाज को समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और सामाजिक न्याय की दिशा प्रदान की। उनके विचार आज भी सामाजिक परिवर्तन और लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए मार्गदर्शक बने हुए हैं।

कार्यक्रम का संचालन इंजीनियर गोवर्धन लाल ने किया। उन्होंने अपने संबोधन में बुद्ध और आंबेडकर के विचारों को समकालीन समाज की आवश्यकताओं से जोड़ते हुए शिक्षा, संगठन और सामाजिक जागरूकता पर बल दिया।

समारोह में प्रतिष्ठित साहित्यकार मनोहर लाल 'प्रेमी' भी उपस्थित रहे। उन्होंने सामाजिक चेतना के निर्माण में साहित्य की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए कहा कि वैचारिक साहित्य समाज को दिशा देने का महत्वपूर्ण माध्यम है। उन्होंने आंबेडकरवादी चिंतन, स्वाभिमान और मानवीय गरिमा के प्रश्नों को रेखांकित किया।

कार्यक्रम में उपस्थित अन्य वक्ताओं ने भी बुद्ध और आंबेडकर के विचारों की समकालीन प्रासंगिकता पर अपने विचार रखे। पूरे समारोह में धम्म, सामाजिक न्याय, शिक्षा, संगठन और मानव–मुक्ति के प्रश्नों पर सार्थक चर्चा हुई। उपस्थित जनसमूह ने बुद्ध एवं आंबेडकर के मानवीय संदेश को समाज के व्यापक हित में आगे बढ़ाने का संकल्प व्यक्त किया।

समारोह का समापन धन्यवाद ज्ञापन और बुद्धगाथा के सामूहिक पाठ के साथ किया गया। कार्यक्रम ने क्षेत्र में सामाजिक जागरूकता, वैचारिक संवाद और धम्म–चेतना को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा बुद्ध और आंबेडकर के मानवतावादी संदेश को जनसामान्य तक पहुँचाने का कार्य किया।

धम्म-चर्चा में डॉ. आंबेडकर के राजनीतिक मिशन पर हुई सार्थक चर्चा

सनम जी, जिला संवाददाता

चंदौली, 14 जून 2026

विश्वगुरु तथागत बुद्ध की त्रिविध पावन वैशाखी पूर्णिमा के पावन पर्व की पूर्व संध्या पर कुकुही, बालामऊ में बुद्ध, आंबेडकर जयंती समारोह का भव्य आयोजन किया गया। कार्यक्रम का आयोजन अखिल भारतीय बौद्ध एसोसिएशन के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ। समारोह में क्षेत्र के बुद्धिजीवियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, धम्मानुयायियों तथा युवाओं की उल्लेखनीय सहभागिता रही।

आंबेडकरवादी साहित्य प्रकाशन के तत्वावधान में ग्राम कटसिल (चंदौली) में धम्म–चर्चा का उद्घाटन सत्र आयोजित किया गया। चर्चा का विषय था– ''डॉ. भीमराव आंबेडकर का राजनीतिक मिशन और समकालीन राजनीति''। कार्यक्रम का संचालन आंबेडकरवादी साहित्य प्रकाशन के प्रकाशक एवं धम्म–चर्चा के संयोजक देवचंद्र भारती 'प्रखर' ने किया।



कार्यक्रम का आरंभ भारतीय संविधान की प्रस्तावना के सामूहिक वाचन से हुआ। इसके उपरांत उपस्थित प्रतिभागियों ने निर्धारित विषय पर गंभीर वैचारिक चर्चा की। चर्चा के दौरान डॉ. आंबेडकर के राजनीतिक चिंतन, लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक न्याय, प्रतिनिधित्व, राजनीतिक शक्ति तथा समकालीन राजनीति की चुनौतियों पर तार्किक वाद–संवाद हुआ। प्रतिभागियों ने अपने विचार प्रस्तुत किए तथा विभिन्न प्रश्नों पर संवादात्मक शैली में विमर्श किया।

विचारक परशुराम गौतम ने अपने वक्तव्य में कहा कि डॉ. आंबेडकर का राजनीतिक मिशन केवल सत्ता प्राप्ति का प्रश्न नहीं था, बल्कि सामाजिक न्याय और समान अवसरों पर आधारित लोकतांत्रिक व्यवस्था के निर्माण का कार्यक्रम था। श्यामनारायण बौद्ध ने कहा कि वर्तमान समय में आंबेडकर के राजनीतिक चिंतन को समझना और उसे सामाजिक जीवन में लागू करना पहले से अधिक आवश्यक हो गया है।

कार्यक्रम का संचालन करते हुए देवचंद्र भारती 'प्रखर' ने कहा कि धम्म–चर्चा का उद्देश्य केवल धार्मिक विषयों तक सीमित नहीं है। शिक्षा, साहित्य, समाज, राजनीति, संविधान, सामाजिक न्याय और समकालीन प्रश्नों पर वैचारिक संवाद भी धम्म–चर्चा का महत्वपूर्ण भाग हैं। उन्होंने बताया कि यह कार्यक्रम धम्म–चर्चा श्रृंखला का उद्घाटन सत्र है तथा भविष्य में नियमित रूप से विभिन्न विषयों पर धम्म–चर्चा आयोजित की जाएगी।

यह उद्घाटन सत्र अभिलाषा भारती के जन्मदिवस के अवसर पर आयोजित किया गया। इस अवसर पर उपस्थित लोगों ने उन्हें मंगलकामनाएँ प्रदान कीं।

कार्यक्रम में सनम जी, महेंद्र प्रसाद, जयश्री प्रसाद, राजीव गौतम, सुशीला देवी, माया कुमारी, अभिलाषा भारती, नितेश कुमार सहित क्षेत्र के अनेक अध्ययनशील एवं विचारशील नागरिक उपस्थित रहे।

कार्यक्रम का समापन धन्यवाद ज्ञापन के साथ हुआ। प्रतिभागियों ने धम्म–चर्चा को क्षेत्र में वैचारिक जागरूकता, अध्ययनशीलता और सामाजिक संवाद के एक महत्वपूर्ण मंच के रूप में विकसित करने का संकल्प व्यक्त किया।

आंबेडकर का मिशन (निबंध)

– डॉ. बी.आर. बुद्धप्रिय

आधुनिक भारत के इतिहास में डॉ. भीमराव आंबेडकर का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। वे केवल एक विधिवेत्ता या संविधान निर्माता नहीं थे, बल्कि एक ऐसे चिंतक थे जिन्होंने भारतीय समाज की संरचना का गहन विश्लेषण करते हुए उसके परिवर्तन की स्पष्ट दिशा प्रस्तुत की। उनके विचारों का केंद्र केवल राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति नहीं था, बल्कि समाज के उस ढाँचे को बदलना था जिसके भीतर असमानता और सामाजिक विभाजन लंबे समय से विद्यमान रहे थे। डॉ. आंबेडकर के जीवन और कार्यों को समझने के लिए ''मिशन'' की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके लिए सामाजिक परिवर्तन केवल एक वैचारिक चर्चा नहीं था, बल्कि एक संगठित ऐतिहासिक कार्य था। उन्होंने अपने जीवन को एक ऐसे उद्देश्य के लिए समर्पित किया जो समाज की संरचना को बदलने से जुड़ा हुआ था। इस दृष्टि से आंबेडकर का मिशन भारतीय समाज को जन्म आधारित असमानताओं से मुक्त करके उसे समानता और मानव गरिमा के आधार पर पुनर्गठित करने की दिशा में केंद्रित था।

डॉ. आंबेडकर ने अपने समय के भारतीय समाज को केवल परंपराओं के आधार पर नहीं समझा। उन्होंने उसका ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया। इसी विश्लेषण के आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या उसकी असमान संरचना है। जब तक इस संरचना को नहीं बदला जाएगा, तब तक समाज में वास्तविक न्याय और समानता स्थापित नहीं हो सकती।

आंबेडकर के समय का भारतीय समाज गहरे सामाजिक विभाजनों से प्रभावित था। जाति व्यवस्था ने समाज को अनेक स्तरों में विभाजित कर दिया था और इन स्तरों के बीच सामाजिक संपर्क अत्यंत सीमित था। व्यक्ति का सामाजिक स्थान जन्म के आधार पर निर्धारित होता था और उसे बदलने की संभावना बहुत कम होती थी। इस व्यवस्था का प्रभाव केवल सामाजिक प्रतिष्ठा तक सीमित नहीं था। इसका प्रभाव जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों पर दिखाई देता था-शिक्षा, रोजगार, सामाजिक संबंध, सार्वजनिक जीवन में भागीदारी और संसाधनों तक पहुँच। समाज के कुछ वर्गों को विशेषाधिकार प्राप्त थे, जबकि अनेक समुदायों को लगातार वंचना का सामना करना पड़ता था।

डॉ. आंबेडकर ने इस स्थिति का गहन अध्ययन किया। उन्होंने यह समझा कि यह केवल सामाजिक व्यवहार का प्रश्न नहीं है, बल्कि समाज की संगठनात्मक संरचना का परिणाम है। जब समाज की संरचना ही असमानता पर आधारित होती है, तब उसके भीतर न्याय और समानता की स्थापना अत्यंत कठिन हो जाती है। डॉ. आंबेडकर के चिंतन का एक महत्वपूर्ण पक्ष सामाजिक विभाजन की समस्या से जुड़ा हुआ है। उनके अनुसार कोई भी समाज तब तक स्थिर और प्रगतिशील नहीं हो सकता जब तक उसके सदस्यों के बीच सहयोग और समानता की भावना विकसित न हो। यदि समाज अनेक स्थायी समूहों में विभाजित हो जाए और उनके बीच दूरी बनी रहे, तो सामाजिक एकता का विकास नहीं हो सकता।

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था ने इसी प्रकार का विभाजन उत्पन्न किया था। इस व्यवस्था ने समाज के विभिन्न समूहों के बीच संपर्क को सीमित कर दिया और सामाजिक जीवन में अनेक प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न कीं। परिणामस्वरूप समाज के भीतर व्यापक सामाजिक एकता का विकास नहीं हो पाया। डॉ. आंबेडकर ने इस स्थिति को समाज की प्रगति के लिए गंभीर बाधा माना। उनके अनुसार सामाजिक विभाजन समाज की सामूहिक शक्ति को कमजोर कर देता है और उसके विकास की संभावनाओं को सीमित कर देता है। इन परिस्थितियों को देखते हुए आंबेडकर ने यह समझा कि भारतीय समाज को एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता है। यह परिवर्तन केवल कुछ सुधारों के माध्यम से संभव नहीं था। इसके लिए समाज की संरचना और उसके मूल सिद्धांतों पर पुनर्विचार करना आवश्यक था।

आंबेडकर का मिशन इसी आवश्यकता से उत्पन्न हुआ। उन्होंने समाज को एक ऐसी दिशा देने का प्रयास किया जिसमें समानता और न्याय को केंद्रीय मूल्य के रूप में स्वीकार किया जाए। उनके अनुसार समाज तभी प्रगतिशील बन सकता है जब उसके सभी सदस्य समान मानवीय सम्मान के साथ जीवन जी सकें। इस प्रकार आंबेडकर का मिशन केवल सामाजिक आलोचना नहीं था। वह समाज के पुनर्गठन की एक स्पष्ट वैचारिक परियोजना थी।

भारतीय समाज की संरचना का विश्लेषण करते हुए डॉ. भीमराव आंबेडकर ने जिस समस्या को सबसे अधिक गंभीर माना, वह असमानता की समस्या थी। उनके अनुसार किसी भी समाज की नैतिकता और उसकी प्रगति इस बात से निर्धारित होती है कि उसमें मनुष्यों के बीच किस प्रकार के संबंध स्थापित होते हैं। यदि समाज में कुछ लोगों को श्रेष्ठ और अन्य लोगों को निम्न माना जाता है, तो उस समाज में न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना संभव नहीं हो सकती। भारतीय समाज में असमानता केवल आर्थिक या राजनीतिक स्तर तक सीमित नहीं थी। यह असमानता सामाजिक प्रतिष्ठा, सामाजिक संबंधों और मानवीय सम्मान से भी जुड़ी हुई थी। समाज के कुछ वर्गों को जन्म के आधार पर ही ऊँचा स्थान प्राप्त था, जबकि अन्य वर्गों को निम्न समझा जाता था। इस व्यवस्था में व्यक्ति की प्रतिभा, श्रम और क्षमता का महत्व गौण हो जाता था और उसकी पहचान केवल उसके जन्म से निर्धारित होती थी।

डॉ. आंबेडकर ने इस स्थिति को मानव गरिमा के विरुद्ध माना। उनके अनुसार मनुष्य का मूल्य उसके जन्म से नहीं बल्कि उसकी मानवता से निर्धारित होना चाहिए। जब समाज किसी व्यक्ति को केवल उसके जन्म के आधार पर निम्न मानता है, तब वह व्यक्ति की मानवीय गरिमा का अपमान करता है। इसलिए असमानता का प्रश्न केवल सामाजिक संरचना का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह मानव गरिमा का भी प्रश्न है। डॉ. आंबेडकर का विचार था कि समाज में समानता स्थापित किए बिना किसी भी प्रकार का लोकतंत्र स्थायी नहीं रह सकता। यदि समाज के भीतर गहरी असमानता बनी रहेगी, तो लोकतांत्रिक संस्थाएँ भी वास्तविक अर्थों में प्रभावी नहीं होंगी। लोकतंत्र का अर्थ केवल राजनीतिक अधिकार नहीं है; उसका अर्थ यह भी है कि समाज में सभी व्यक्तियों को समान मानवीय सम्मान प्राप्त हो। डॉ. आंबेडकर ने यह भी स्पष्ट किया कि असमानता केवल सामाजिक व्यवहार का परिणाम नहीं होती। यह समाज की संरचना से जुड़ी होती है। जब समाज की संरचना ही ऐसे सिद्धांतों पर आधारित होती है जो लोगों को अलग-अलग स्तरों में बाँटते हैं, तब असमानता स्थायी रूप ले लेती है। ऐसी स्थिति में केवल नैतिक उपदेशों से परिवर्तन संभव नहीं होता। इसके लिए समाज की संरचना को ही बदलना आवश्यक होता है।

डॉ. आंबेडकर के चिंतन में मानव गरिमा का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार समाज का वास्तविक उद्देश्य यह होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति को सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अवसर प्राप्त हो। यदि समाज में कुछ लोग लगातार अपमान और वंचना का जीवन जीने के लिए बाध्य हों, तो वह समाज न्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता। इसी कारण आंबेडकर ने सामाजिक समानता को अपने मिशन का केंद्रीय तत्व बनाया। उनके लिए समानता केवल एक आदर्श नहीं थी, बल्कि समाज के पुनर्गठन की आधारशिला थी। जब समाज समानता को स्वीकार करता है, तभी उसके भीतर न्यायपूर्ण संबंध स्थापित हो सकते हैं।

डॉ. आंबेडकर का मिशन इस दृष्टि से मानव गरिमा की पुनर्स्थापना का भी प्रयास था। उन्होंने समाज को यह समझाने का प्रयास किया कि मनुष्य का सम्मान किसी सामाजिक पहचान या जन्म से निर्धारित नहीं होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को केवल इसलिए सम्मान प्राप्त होना चाहिए क्योंकि वह एक मानव है। इस प्रकार असमानता का प्रश्न आंबेडकर के मिशन के केंद्र में स्थित है। उनके चिंतन का उद्देश्य समाज को ऐसी दिशा देना था जिसमें सभी मनुष्यों को समान सम्मान और समान अवसर प्राप्त हों। जब समाज इस सिद्धांत को स्वीकार करता है, तभी वह वास्तविक अर्थों में न्यायपूर्ण और मानवीय बन सकता है।

डॉ. भीमराव आंबेडकर के मिशन को समझने के लिए उसकी वैचारिक दिशा को स्पष्ट करना आवश्यक है। आंबेडकर का चिंतन केवल किसी एक सामाजिक समस्या तक सीमित नहीं था। उन्होंने भारतीय समाज की संपूर्ण संरचना का विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास किया कि वह कौन-सी ऐतिहासिक और सामाजिक शक्तियाँ हैं जिन्होंने समाज को असमानता और विभाजन की दिशा में ढाल दिया। इसी विश्लेषण के आधार पर उन्होंने समाज के पुनर्गठन की आवश्यकता को रेखांकित किया।

डॉ. आंबेडकर की वैचारिक दिशा का मूल आधार यह था कि समाज का संगठन समानता और न्याय के सिद्धांतों पर होना चाहिए। जब समाज ऐसे सिद्धांतों पर आधारित होता है, तभी उसके भीतर स्वस्थ सामाजिक संबंध विकसित होते हैं। यदि समाज की संरचना ही असमानता को स्वीकार करती हो, तो उसके भीतर न्यायपूर्ण व्यवस्था स्थापित करना अत्यंत कठिन हो जाता है। डॉ. आंबेडकर ने यह स्पष्ट किया कि सामाजिक परिवर्तन केवल बाहरी सुधारों से संभव नहीं है। यदि समाज की मूल संरचना असमानता पर आधारित हो, तो उसके भीतर सीमित सुधार स्थायी परिवर्तन नहीं ला सकते। इसलिए उन्होंने समाज के संगठन के मूल सिद्धांतों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता पर बल दिया। उनके अनुसार समाज को ऐसे सिद्धांतों को स्वीकार करना चाहिए जो सभी मनुष्यों को समान मानवीय गरिमा प्रदान करें।

डॉ. आंबेडकर का चिंतन इस बात पर भी जोर देता है कि समाज का विकास तभी संभव है, जब उसके सभी सदस्य सार्वजनिक जीवन में समान रूप से भाग ले सकें। यदि समाज के कुछ वर्ग लगातार वंचित रहेंगे, तो समाज की सामूहिक शक्ति भी कमजोर हो जाएगी। इस कारण उन्होंने सामाजिक सहभागिता और समान अवसरों के महत्व को रेखांकित किया। डॉ. आंबेडकर के विचारों में न्याय का प्रश्न भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार न्याय का अर्थ केवल कानून की दृष्टि से समानता नहीं है। न्याय का अर्थ यह भी है कि समाज के सभी सदस्यों को अपने जीवन को विकसित करने के लिए समान अवसर प्राप्त हों। जब समाज इस सिद्धांत को स्वीकार करता है, तभी वास्तविक न्याय की स्थापना होती है।

डॉ. आंबेडकर की वैचारिक दिशा समाज के नैतिक आधार से भी जुड़ी हुई है। उनके अनुसार समाज केवल नियमों और कानूनों के माध्यम से नहीं चलता। उसके लिए नैतिक मूल्यों की भी आवश्यकता होती है। यदि समाज के भीतर पारस्परिक सम्मान और सहयोग की भावना विकसित नहीं होगी, तो सामाजिक समानता की स्थापना भी कठिन हो जाएगी। इसी कारण आंबेडकर का मिशन केवल सामाजिक आलोचना नहीं था। वह समाज के नैतिक पुनर्निर्माण की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण प्रयास था। उनका उद्देश्य समाज को ऐसी दिशा देना था जिसमें मनुष्य एक-दूसरे को समान मानव के रूप में स्वीकार करें और उनके बीच सम्मानपूर्ण संबंध स्थापित हों।

डॉ. आंबेडकर की वैचारिक दृष्टि इस बात को भी स्पष्ट करती है कि सामाजिक परिवर्तन एक निरंतर प्रक्रिया है। समाज समय के साथ बदलता रहता है और उसके भीतर नई परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। इसलिए सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को भी निरंतर आगे बढ़ते रहना चाहिए। जब समाज अपने भीतर मौजूद असमानताओं और अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं को पहचानता है, तभी वह उन्हें बदलने की दिशा में कदम उठाता है। इस प्रकार आंबेडकर का मिशन केवल किसी एक ऐतिहासिक क्षण से जुड़ा हुआ कार्यक्रम नहीं था। वह समाज को एक ऐसी दिशा प्रदान करता है जिसमें समानता, न्याय और मानवीय सम्मान को केंद्रीय स्थान प्राप्त होता है। यही दिशा आंबेडकर के मिशन की वैचारिक आधारभूमि को स्पष्ट करती है।

डॉ. भीमराव आंबेडकर के मिशन का अंतिम उद्देश्य समाज का पुनर्गठन था। उन्होंने भारतीय समाज की संरचना का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि जब तक समाज की संगठनात्मक व्यवस्था नहीं बदलेगी, तब तक समानता और न्याय की स्थापना संभव नहीं होगी। इसलिए उनका लक्ष्य केवल सामाजिक आलोचना करना नहीं था, बल्कि समाज को एक नई दिशा देना था। समाज के पुनर्गठन का अर्थ आंबेडकर के लिए केवल कुछ सामाजिक नियमों को बदलना नहीं था। इसका अर्थ समाज के मूल सिद्धांतों को बदलना था। यदि समाज ऐसे सिद्धांतों पर आधारित हो जो मनुष्यों के बीच स्थायी विभाजन पैदा करते हों, तो उस समाज में समानता की स्थापना कठिन हो जाती है। इसलिए आवश्यक है कि समाज अपने संगठन के उन सिद्धांतों को बदले जो असमानता को स्थायी रूप देते हैं।

डॉ. आंबेडकर का विचार था कि समाज का संगठन ऐसे मूल्यों पर होना चाहिए जो सभी मनुष्यों को समान मानवीय गरिमा प्रदान करें। व्यक्ति का सम्मान उसके जन्म से नहीं बल्कि उसकी मानवता से निर्धारित होना चाहिए। जब समाज इस सिद्धांत को स्वीकार करता है, तभी उसके भीतर न्यायपूर्ण संबंध विकसित हो सकते हैं। समाज के पुनर्गठन की प्रक्रिया में सामाजिक संबंधों का परिवर्तन भी आवश्यक होता है। जब समाज के विभिन्न समूह एक-दूसरे को समान मानव के रूप में स्वीकार करते हैं, तब उनके बीच सहयोग और सम्मान का वातावरण विकसित होता है। इस प्रकार सामाजिक संबंधों में परिवर्तन समाज के पुनर्गठन का एक महत्वपूर्ण तत्व बन जाता है।

डॉ. आंबेडकर का मानना था कि समाज का विकास तभी संभव है जब उसके सभी सदस्य समान अवसरों के साथ सामाजिक और सार्वजनिक जीवन में भाग ले सकें। यदि समाज के कुछ वर्ग लगातार वंचित रहेंगे, तो समाज की सामूहिक प्रगति भी सीमित रह जाएगी। इसलिए समाज के पुनर्गठन का उद्देश्य यह होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन को विकसित करने के लिए समान अवसर प्राप्त हों। डॉ. आंबेडकर ने यह भी समझा कि सामाजिक परिवर्तन केवल कानूनों के माध्यम से नहीं किया जा सकता। कानून सामाजिक परिवर्तन की दिशा प्रदान कर सकते हैं, लेकिन समाज की वास्तविक परिवर्तनशील शक्ति उसके लोगों की चेतना में निहित होती है। जब समाज के लोग समानता और न्याय के मूल्यों को स्वीकार करते हैं, तभी समाज में स्थायी परिवर्तन संभव होता है। इस प्रकार आंबेडकर का मिशन समाज के व्यापक परिवर्तन से जुड़ा हुआ है। उन्होंने समाज को एक ऐसी दिशा देने का प्रयास किया जिसमें मनुष्यों के बीच संबंध समानता, सम्मान और न्याय पर आधारित हों। उनका चिंतन यह स्पष्ट करता है कि समाज का वास्तविक विकास तभी संभव है जब उसके सभी सदस्य समान मानवीय गरिमा के साथ जीवन जी सकें।

डॉ. आंबेडकर का मिशन भारतीय समाज की संरचना का गहन विश्लेषण करते हुए उसके पुनर्गठन की दिशा प्रस्तुत करता है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि असमानता और सामाजिक विभाजन समाज की प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। जब तक समाज इन बाधाओं को दूर नहीं करेगा, तब तक न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना संभव नहीं होगी। आंबेडकर का चिंतन इस बात पर बल देता है कि समाज का संगठन समानता और मानव गरिमा के सिद्धांतों पर होना चाहिए। जब समाज इन मूल्यों को स्वीकार करता है, तभी उसके भीतर न्यायपूर्ण और मानवीय संबंध विकसित होते हैं। इसी दृष्टि से आंबेडकर का मिशन आधुनिक भारत के निर्माण की एक महत्वपूर्ण वैचारिक दिशा प्रस्तुत करता है। उनका चिंतन केवल अतीत की समस्या का विश्लेषण नहीं करता, बल्कि समाज को अधिक न्यायपूर्ण और समानतामूलक बनाने की दिशा भी दिखाता है।



विमर्श का तमाशा (निबंध)

- देवचंद्र भारती 'प्रखर'

समकालीन बौद्धिक और साहित्यिक जीवन में एक शब्द अत्यंत तेजी से प्रचलित हुआ है-'विमर्श'। आज साहित्य, समाज और राजनीति के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी प्रकार का विमर्श दिखाई देता है। स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, बहुजन-विमर्श, अल्पसंख्यक-विमर्श, सांस्कृतिक-विमर्श, पहचान-विमर्श-ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग आज सामान्य हो गया है। पहली दृष्टि में यह स्थिति सकारात्मक प्रतीत होती है, क्योंकि इससे यह संकेत मिलता है कि समाज में विभिन्न प्रश्नों पर विचार और बहस हो रही है। किंतु जब इन तथाकथित विमर्शों की प्रकृति, उद्देश्य और वास्तविक प्रभाव का गंभीर विश्लेषण किया जाता है, तब एक अलग ही चित्र सामने आता है। अनेक बार यह अनुभव होता है कि यह विमर्श वास्तविक चिंतन की प्रक्रिया कम और बौद्धिक प्रदर्शन अधिक बन गया है। यही कारण है कि वर्तमान समय में 'विमर्श' कई बार एक गंभीर वैचारिक प्रक्रिया के बजाय एक प्रकार का तमाशा बनता हुआ दिखाई देता है।

विमर्श की मूल अवधारणा और बौद्धिक अर्थ

विमर्श का वास्तविक अर्थ है-किसी विषय पर गंभीर, तर्कपूर्ण और विश्लेषणात्मक विचार करना। यह केवल विचार व्यक्त करने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि विचार की परीक्षा करने की प्रक्रिया भी है। विमर्श में प्रश्न उठते हैं, तर्क दिए जाते हैं, प्रमाण प्रस्तुत किए जाते हैं और विभिन्न दृष्टियों से विषय का परीक्षण किया जाता है। वास्तविक विमर्श में भावनात्मक उत्तेजना से अधिक महत्व विवेकपूर्ण चिंतन का होता है। इसमें नारे नहीं होते, बल्कि तर्क होते हैं; आरोप नहीं होते, बल्कि विश्लेषण होता है; और समूहगत आग्रह नहीं होते, बल्कि सत्य की खोज का प्रयास होता है। यदि किसी समाज में इस प्रकार की बौद्धिक प्रक्रिया सक्रिय रहती है, तो वह समाज वैचारिक रूप से जीवंत और गतिशील बना रहता है। लेकिन जब विमर्श केवल शब्दों का खेल बन जाए और उसके पीछे गंभीर अध्ययन का अभाव हो, तब उसकी सार्थकता समाप्त होने लगती है।

विमर्श की फैशनपरस्ती और शब्दों का आकर्षण

समकालीन साहित्यिक और अकादमिक वातावरण में विमर्श कई बार एक प्रकार की फैशनपरस्ती का रूप ले चुका है। कुछ लोग केवल इसलिए किसी विषय को विमर्श घोषित कर देते हैं क्योंकि वह शब्द उस समय लोकप्रिय है। अनेक लेख, व्याख्यान और संगोष्ठियाँ इस प्रकार के विमर्शों से भरी हुई दिखाई देती हैं। कई बार यह देखा जाता है कि जिन लोगों के पास किसी विषय का गंभीर अध्ययन नहीं होता, वे भी विमर्श की भाषा का प्रयोग करके स्वयं को बौद्धिक वर्ग का हिस्सा दिखाने का प्रयास करते हैं। इस स्थिति में विमर्श ज्ञान की प्रक्रिया नहीं रह जाता, बल्कि बौद्धिक दिखावे का साधन बन जाता है।

विमर्श और पहचान की राजनीति

आज अनेक विमर्श पहचान की राजनीति से भी जुड़े हुए दिखाई देते हैं। समाज के विभिन्न समूह अपनी पहचान के आधार पर विचार और साहित्य को वर्गीकृत करने का प्रयास करते हैं। पहचान की राजनीति का उद्देश्य कभी-कभी सामाजिक अन्याय की ओर ध्यान आकर्षित करना भी होता है। किंतु जब पहचान ही विमर्श का एकमात्र आधार बन जाती है, तब यह प्रक्रिया कई बार विचार को सीमित भी कर देती है। साहित्य और विचार का मूल स्वभाव व्यापक और मानवीय होता है। यदि उसे केवल पहचान आधारित सीमाओं में बाँध दिया जाए, तो उसकी व्यापकता प्रभावित हो सकती है। इस प्रकार विमर्श की प्रक्रिया कई बार विचार की स्वतंत्रता को बढ़ाने के बजाय उसे सीमित कर देती है।

विमर्श की आड़ में विशेषाधिकार और आरक्षण की मांग

समकालीन विमर्शों का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि कई बार उनके माध्यम से विशेषाधिकार और आरक्षण जैसी मांगों को वैचारिक वैधता देने का प्रयास किया जाता है। उदाहरण के रूप में दलित-विमर्श और नारी-विमर्श जैसे शब्दों का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। इन विमर्शों के माध्यम से सामाजिक समस्याओं की चर्चा होना स्वाभाविक

और आवश्यक है। किंतु जब इन विमर्शों का उपयोग केवल विशेषाधिकार की मांग को स्थापित करने के लिए किया जाने लगे, तब स्थिति जटिल हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि विमर्श के नाम पर समाज में नए प्रकार के अधिकार और सुविधाएँ स्थापित करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इससे समाज में संतुलन के बजाय असंतुलन उत्पन्न होने का खतरा भी पैदा हो सकता है। विमर्श यदि सामाजिक न्याय की दिशा में कार्य करे, तो उसका महत्व है। किंतु यदि वह केवल समूहगत विशेषाधिकार की मांग का माध्यम बन जाए, तो उसकी वैचारिक विश्वसनीयता कमजोर हो जाती है।

विमर्श और बौद्धिक बाजार

आधुनिक समय में विमर्श एक बौद्धिक बाजार का रूप भी ले चुका है। विश्वविद्यालयों, साहित्यिक संस्थाओं और सांस्कृतिक मंचों पर विमर्श के नाम पर अनेक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। सेमिनार, संगोष्ठियाँ और सम्मेलन इस प्रकार के विमर्शों से भरे रहते हैं। इन आयोजनों में लंबी-लंबी भाषणबाजी होती है, लेकिन यह प्रश्न उठता है कि इन विमर्शों से समाज में वास्तविक परिवर्तन कितना हो रहा है। ऐसा लगता है कि विमर्श का उद्देश्य समस्या का समाधान खोजने के बजाय बौद्धिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना बन गया है। इस प्रकार विमर्श एक प्रकार के प्रदर्शन में बदल जाता है, जहाँ विचार की गंभीरता से अधिक महत्व मंच और भाषण को दिया जाता है।

विमर्श और सामाजिक संतुलन का प्रश्न

समाज का स्वस्थ विकास संतुलन पर आधारित होता है। यदि किसी भी सामाजिक प्रक्रिया में संतुलन का अभाव हो, तो उसका प्रभाव समाज की संरचना पर पड़ता है। जब विमर्श केवल विशेष समूहों की पहचान और अधिकारों के इर्द-गिर्द घूमने लगता है, तब समाज में विभाजन की प्रवृत्ति बढ़ सकती है। समता का सिद्धांत यह है कि समाज में सभी व्यक्तियों को समान अवसर और सम्मान प्राप्त हो। यदि विमर्श समाज को अलग-अलग खेमों में बाँटने लगे, तो वह समतामूलक समाज की स्थापना में बाधा बन सकता है।

बौद्धिक ईमानदारी और तर्कशीलता की आवश्यकता

किसी भी विमर्श की सबसे बड़ी शर्त बौद्धिक ईमानदारी है। यदि किसी विषय पर चर्चा की जा रही है, तो उसमें निष्पक्षता, तर्क और प्रमाण का होना आवश्यक है। विमर्श का उद्देश्य पूर्वनिर्धारित निष्कर्ष को सिद्ध करना नहीं, बल्कि सत्य की खोज करना होना चाहिए। जब विमर्श पूर्वाग्रह, समूहवाद या व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का साधन बन जाता है, तब वह ज्ञान के बजाय भ्रम उत्पन्न करता है। इसलिए विमर्श की प्रक्रिया में बौद्धिक अनुशासन और तर्कशीलता अत्यंत आवश्यक है।

तर्क, अध्ययन और सामाजिक परिवर्तन : आंबेडकरवादी दृष्टि

डॉ. भीमराव आंबेडकर का चिंतन गहरे बौद्धिक अनुशासन और तर्कशीलता पर आधारित था। उन्होंने सामाजिक समस्याओं का अध्ययन भावनात्मक दृष्टि से नहीं, बल्कि तर्क, प्रमाण और ऐतिहासिक विश्लेषण के आधार पर किया। आंबेडकरवादी दृष्टि यह स्पष्ट करती है कि किसी भी सामाजिक प्रश्न को समझने के लिए गंभीर अध्ययन और विवेकपूर्ण चिंतन आवश्यक है। डॉ. आंबेडकर ने सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा, संगठन और संघर्ष को आवश्यक बताया। उनके लिए विचार केवल भाषण का विषय नहीं था, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का उपकरण था। इस दृष्टि से देखा जाए, तो सच्चा विमर्श वही है, जो समाज में समानता, न्याय और मानवीय गरिमा की स्थापना की दिशा में मार्गदर्शन करे। यदि विमर्श केवल शब्दों और नारों का प्रदर्शन बन जाए, तो वह सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को आगे नहीं बढ़ा सकता।

निष्कर्ष

विमर्श एक महत्वपूर्ण बौद्धिक प्रक्रिया है। यह समाज को समझने और बदलने का एक शक्तिशाली माध्यम हो सकता है। किंतु इसकी सार्थकता तभी है जब यह गंभीर चिंतन, बौद्धिक ईमानदारी और सामाजिक जिम्मेदारी से जुड़ा हो। जब विमर्श केवल फैशन, पहचान की राजनीति या बौद्धिक प्रदर्शन का साधन बन जाता है, तब वह अपनी मूल अर्थवत्ता खो देता है। इसलिए आवश्यक है कि विमर्श को तमाशा बनने से बचाया जाए और उसे समाज की वास्तविक समस्याओं को समझने और उनके समाधान की दिशा में प्रयुक्त किया जाए। सच्चा विमर्श वही है, जो समाज को विभाजित करने के बजाय उसे समझने और बदलने की दिशा में प्रेरित करे तथा समतामूलक समाज की स्थापना में सहायक बने।

पांचवी फेल

- श्यामलाल राही

बात ज़रा पुरानी है। कटरा सआदतगंज प्राइमरी स्कूल की कक्षा पांचवी में पाँच विद्यार्थी पढ़ते थे, जिनके नाम थे- रणवीर, बलवीर, शमशेर, सुधीर और प्रेमपाल। रणवीर और बलवीर भाई-भाई थे तथा गाँव के प्रभावशाली यादव परिवार के लड़के थे। शमशेर ठाकुर जाति का लड़का था। सुधीर और प्रेमपाल जाटव जाति के थे। आज़ादी मिले एक दशक से ऊपर हो चुका था।

कटरा सआदतगंज को अवध के प्रथम नवाब सआदत ख़ाँ के नाम पर बसाया गया था। वे बुरहान-उल-मुल्क 'बहादुर जंग', मीर-ए-आतिश के पद पर मुहम्मद शाह रंगीला, दिल्ली के मुग़ल बादशाह के यहाँ तैनात थे। 1722 से लेकर 1739 तक वे अवध के नवाब रहे। अपनी युवावस्था में उन्होंने अपने पिता मीर मोहम्मद अमीन के साथ बादशाह औरंगज़ेब के लिए दक्कन में युद्ध किये थे। तब उन्हें 'बहादुर जंग' का ख़िताब मिला था। मुहम्मद शाह रंगीला के समय वे लोकप्रिय थे, हकीम थे और उन्हें मीर-ए-आतिश का पद प्राप्त था। बदायूं के सूबेदार ने उनके नाम पर कटरा सआदतगंज बसाया था। 'कटरा' का अर्थ होता है- छोटी आबादी। बहरहाल, उस इलाके में, उस जमाने में और आज भी कटरा सआदतगंज एक महत्वपूर्ण गाँव है।

कटरा प्राइमरी स्कूल के हेडमास्टर थे- मौलवी हमीदुल्लाह ख़ाँ। वे कटरा के ही निवासी थे और एक बड़े खानदान के लड़के थे। उनका सारा खानदान पाकिस्तान चला गया था, पर वे नहीं गए। खानदान वाले पाकिस्तान जाने से पहले अपनी सारी ज़मीन-जायदाद बेच गए थे। मौलवी हमीदुल्लाह ख़ाँ के पास कुछ अधिक नहीं बचा था। वे स्कूल में अध्यापक बन गए और कटरा में ही बस गए। वे नौजवान थे और पढ़ने-लिखने में गहरी रुचि रखते थे।

परंतु उनकी एक बड़ी मुसीबत थी- सोमवीर सिंह का लड़का रणवीर। वह पढ़ाई में तो कमजोर था ही, आचरण का भी अच्छा नहीं था। कक्षा के हिसाब से वह उम्र में भी बड़ा था। वह 14 साल का हो गया था और अभी पाँचवी में ही पढ़ रहा था। उसका छोटा भाई बलवीर सामान्य सा विद्यार्थी था। शमशेर और सुधीर भी सामान्य ही थे, परंतु उनमें आपसी दोस्ती अच्छी थी। शमशेर ठाकुर होने के बावजूद सुधीर से कोई छुआछूत नहीं मानता था।

कटरा का स्कूल अंग्रेज़ी जमाने का बना हुआ था, जिसमें मात्र एक बड़ा हालनुमा कमरा था। जूनियर हाई स्कूल सन् 1950 में खुला था, जो गाँव की पूर्व दिशा में एक बाबा की मढ़ी पर चलता था। उस बाबा को शिक्षा बहुत प्रिय थी। उनका नाम बालक नाथ था और जाति से वे बनिया थे। वह मढ़ी उन्हीं की मिल्कियत थी। उन्होंने स्कूल के लिए तीन बड़े कमरे बनवाए थे- कुछ अपने खर्च से और कुछ दान एकत्र करके। उनके आगे एक बरामदा भी बनवाया गया था। उनकी अपनी मढ़ी अलग थी, जिसमें दो कमरे थे। प्राइमरी स्कूल गाँव के पश्चिम में था, जबकि जूनियर हाई स्कूल पूर्व में।

मौलवी हमीदुल्लाह ख़ाँ के एक ही सहायक थे- पंडित किशोरी लाल शर्मा। वे पड़ोस के गाँव खेड़ा जलालपुर के रहने वाले थे। वे पाखंडी स्वभाव के व्यक्ति थे। पूजा-पाठ तो बहुत करते थे, पर आचरण से भ्रष्ट थे। उनकी नौकरी मौलवी साहब से पुरानी थी, परंतु उनकी नौकरी का बड़ा हिस्सा बिना शिक्षण-प्रशिक्षण के बीता था। इस कारण वे हेडमास्टर हमीदुल्लाह ख़ाँ से जूनियर थे।

वे लगभग पचास वर्ष के थे। उनकी पत्नी मर चुकी थी। एक ही लड़का था, जो बदायूं में सरकारी नौकरी करने लगा था। पंडित किशोरी लाल गाँव में ही रहते थे और चाल-चलन के मामले में बदनाम थे। पढ़ाने में वे ठीक-ठाक थे।

स्कूल में लगभग 80 बच्चे थे। पूरी कक्षा पाँच में सबसे छोटा प्रेमपाल था, पर वही सबसे होशियार भी था। इसी कारण वह पूरी कक्षा की घृणा का शिकार हो गया था। वह गणित के सवाल सबसे पहले हल कर लेता था। वह आज्ञाकारी स्वभाव का था। बाकी लड़के उसे मौलवी का चमचा कहा करते थे।

स्कूल में एक कुआँ बना हुआ था और वहाँ सरकारी लोटा-बाल्टी रखे रहते थे। नया संविधान लागू होने के बाद छुआछूत अपराध घोषित हो चुका था, फिर भी स्कूल में छुआछूत बराबर बनी हुई थी। यही कारण था कि जब छोटी जाति के लड़कों को पानी पीना होता, तो वे भागकर घर से पानी पीकर आते या मौलवी से कहते, तो कोई ऊँची जाति का लड़का उन्हें पानी भरकर पिला देता।

जाहिर तौर पर सहायक शिक्षक शर्मा शाकाहारी थे, पर जब मौलवी साहब के घर मांस बनता, तो वे जाकर अवश्य खा आते। मौलवी साहब के यहाँ उन्हें खाने में कोई एतराज नहीं था।

रणवीर एक समस्यामूलक बालक था। वह अक्सर झगड़ा करता था। बड़ा होने के कारण छोटे बच्चों को पीट भी देता था। पर वह प्रेमपाल को पसंद करता था। प्रेमपाल उसके बड़े होने के कारण उसका सम्मान करता था। एक कारण यह भी था कि प्रेमपाल का बाप बच्चन, सोमवीर का हलवाहा था। हलवाहे के साथ रणवीर का व्यवहार दोस्त जैसा ही था। सोमवीर ने उसे अदब-कायदा सिखाया था। उसके लड़के भी बच्चन का सम्मान करते थे, जो उस समय के ग्रामीण समाज में एक दुर्लभ बात थी।

पांचवी की परीक्षा का समय आ गया था। प्रेमपाल, रणवीर और उनके अन्य साथी इस वर्ष पाँचवी की परीक्षा में बैठने वाले थे। मई का महीना था। पांचवी की परीक्षा उस सहित कस्बे में होनी थी। सारी तैयारियाँ होने लगीं। उसहैत कस्बा कटरा सआदतगंज से लगभग पाँच कोस दूर था। गाँव के लड़कों ने सारी तैयारी कर ली और मौलवी साहब के निर्देशन में गाँव से चल पड़े। सबने अपना-अपना खाना साथ ले लिया था, क्योंकि परीक्षा दो दिन चलनी थी। स्कूल के सामने ही खाना बनाना और खाना था। स्कूल में एक हैंडपंप लगा हुआ था।

वे सब लगभग सुबह छह बजे उत्साहित होकर वहाँ पहुँच गये। मौलवी साहब के साथ बच्चों के ठहरने की व्यवस्था स्कूल में ही थी। उस स्कूल की एक खास बात यह थी कि वहाँ हेडमास्टर का आवास भी बना हुआ था। अंग्रेज़ी राज्य के समय अंग्रेज बहुत कम पैसा खर्च करते थे। स्कूल और अस्पताल के भवन भी प्रायः नवाबों, जमींदारों तथा बड़े आदमियों से बनवाए जाते थे। बदायूं के जिला कलेक्टर ने उसहैत का यह स्कूल यहाँ के एक स्थानीय जमींदार तोताराम गुप्त से बनवाया था।

स्कूल में तीन बड़े-बड़े कमरे थे तथा एक अच्छा-सा बरामदा भी था। प्रधानाध्यापक का आवास उससे सटा हुआ था, जिसमें दो कमरे, एक बरामदा और एक रसोई बनी हुई थी। उसहैत के हेडमास्टर पूरनलाल जाटव थे, जो दातागंज के रहने वाले थे। वे स्कूल के आवास में ही रहते थे। पूरनलाल अच्छे और मिलनसार व्यक्ति थे। इसी कारण वे इस मुख्य स्कूल के प्रधानाध्यापक बने हुए थे।

कटरा सआदतगंज के मौलवी साहब का पूरनलाल बहुत आदर करते थे। उस रात बच्चे बरामदे में ही सोये। सुबह वे सोत नदी पर जाकर दिशा-मैदान से निवृत्त हुये, घाट पर हाथ-मुँह धोये, कुछ खाया-पिया और फिर सात बजे से परीक्षा शुरू हो गयी।

डिप्टी साहब आठ बजे आ गये। पूरे सेंटर पर लगभग पचास परीक्षार्थी थे। डिप्टी साहब सरल मिजाज के आदर्शवादी अधिकारी थे। उन्होंने बहुत सावधानी से परीक्षा करायी। जिस-जिस प्रश्नपत्र की उत्तर-पुस्तिकाएँ जमा होतीं, उन्हें तुरंत ही वे जाँचने लगते। मुख्य परीक्षा पहले दिन ही समाप्त हो गयी। जो बच्चे दूर के थे, वे नहीं रुके।

अगले दिन प्रायोगिक परीक्षा हुई, जिसमें मिट्टी का काम और सूत काटना आदि कार्य थे। लगभग दस बजे तक परीक्षा समाप्त हो गयी और बच्चे अपने-अपने घरों को लौट गये। फिर परीक्षा-फल तैयार हुआ। रणवीर, मौलवी साहब के लाख प्रयत्नों के बावजूद, अनुत्तीर्ण हो गया। सबसे छोटा प्रेमपाल पूरे परीक्षा केंद्र पर प्रथम रहा। डिप्टी साहब से सिफारिश करने की किसी की भी हिम्मत नहीं पड़ी, क्योंकि वे बहुत सख्त मिजाज के अधिकारी थे।

सोमवीर सिंह ने रणवीर की पढ़ाई छुड़ा दी। उधर प्रेमपाल ने अपनी पढ़ाई जारी रखी। बच्चन की रिश्तेदारी कंपिल में थी। रास्ते में गंगा नदी अवश्य पड़ती थी। प्रेमपाल आठवीं के बाद कंपिल चला गया, जहाँ से उसने इंटर तक की पढ़ाई की। उसने आठवीं, दसवीं और इंटर-तीनों परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। वह परिश्रमी, संयमी और सबका सम्मान करने वाला बालक था। बी.ए. करने के लिए वह बदायूं आ गया। वह शहर तक पैदल आता और वहाँ से बस मिल जाती। उसने किराए पर कमरा लेकर स्वयं रोटी बनाना और पढ़ाई करना शुरू किया। इतिहास विषय में उसने द्वितीय श्रेणी प्राप्त

की, जबकि बी.ए. में वह प्रथम श्रेणी में था। इसके बाद वह प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने लगा। प्रथम प्रयास में ही वह कृषि अधिकारी बन गया।

उधर रणवीर यादव बड़ा होकर पहले गाँव का प्रधान बना। उसका विवाह हो गया। फिर वह ब्लॉक प्रमुख बना। चालीस वर्ष की आयु तक वह एक प्रभावशाली राजनेता बन चुका था। वह तीन बार ब्लॉक प्रमुख रहा। फिर उसने समाजवादी पार्टी का दामन थाम लिया। नेताजी मुलायम सिंह यादव तक उसकी सीधी पहुँच हो गई। उसने जुगाड़ लगाकर एम.एल.ए. का टिकट हासिल कर लिया। जमकर प्रचार-प्रसार हुआ। नेताजी उसके क्षेत्र में प्रचार करने भी आए, पर वह चुनाव जीत नहीं सका। फिर भी वह निराश नहीं हुआ। बाद में वह सहकारी बैंक का चेयरमैन बन गया और दस वर्षों तक चेयरमैन रहा। समय बदला और उसे फिर टिकट मिल गया। इस बार वह चुनाव जीत गया। नेताजी से उसका संबंध पहले से ही था। नेताजी ने उसे राज्य कृषि मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) बना दिया।

उधर प्रेमपाल भी तरक्की की सीढ़ियाँ चढ़ता गया। पहले वह उप कृषि निदेशक बना, फिर आगे बढ़ते-बढ़ते कृषि निदेशक बन गया। यह उसके जीवन की बड़ी उपलब्धि थी। उसके जाटव समाज के लोग उस पर गर्व करते थे। उसके दो लड़के हुए, जिनमें एक सरकारी कॉलेज में प्रोफेसर बन गया और छोटा आईपीएस अधिकारी हो गया। उसने लखनऊ में एक शानदार कोठी बनवाई और एक मकान कटरा में भी बनवाया। रणवीर की गाँव में पहले से ही बड़ी हवेली थी। उसने बदायूं में भी एक कोठी बनवा ली। भारत सरकार ने कृषि मेले हर राज्य में आयोजित कराए। प्रेमपाल ने लखनऊ में बहुत अच्छा कृषि मेला आयोजित कराया। जब उसका मूल्यांकन हुआ, तो प्रदेश का कृषि मेला प्रथम स्थान पर रहा।

मेले के समापन पर राज्य सरकार ने मेले में सहभागिता करने वाले अधिकारियों के सम्मान में एक बड़ा समारोह आयोजित किया। सम्मान समारोह में मुख्यमंत्री को आना था, पर अचानक उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। इस कारण मुख्य अतिथि का दायित्व राज्य कृषि मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) रणवीर यादव को सौंप दिया गया। कार्यक्रम बड़ा ही भव्य था। जब तालियों की गड़गड़ाहट के बीच सम्मान लेने के लिए कृषि निदेशक प्रेमपाल के नाम की घोषणा हुई, तो वह अपने सफारी सूट में सजे हुए मंच पर पहुँचे। जब से रणवीर यादव कृषि मंत्री बने थे, तब से वे उनसे मिलते रहते थे, पर आज का अवसर अलग था।

मंच पर मंत्री जी ने कृषि निदेशक प्रेमपाल को सम्मान-पत्र और स्मृति-चिन्ह प्रदान किया। फिर धीरे से मुस्कराते हुए बोले-''प्रेमपाल, पांचवी फेल अपने साथी के हाथों सम्मान प्राप्त करते हुए आपको कैसा लग रहा है?''

प्रेमपाल ने भी मुस्कराकर धीरे से उत्तर दिया-''पांचवी फेल कोई मायने नहीं रखता। आप तब भी मेरे बड़े भाई थे, आज भी हैं। आपके हाथों सम्मान पाना मेरे लिए गौरव की बात है।''

इसके बाद मंत्री जी ने अपने और प्रेमपाल के बचपन का प्रसंग विस्तार से बताया। उन्होंने कहा-''प्रेमपाल अपनी शैक्षिक योग्यता से यहाँ पहुँचे हैं और मैं बाबा साहब के संविधान के कारण। हमारे लोकतंत्र की यही बड़ी विशेषता है। मैं अधिक नहीं पढ़ सका, पर आप सबको डॉ. आंबेडकर की सीख मानकर अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा अवश्य दिलानी चाहिए।''



राजेश घनघाव : सामान्य व्यक्तित्व का असामान्य कर्तृत्व - एक सच्चे आंबेडकरवादी की यशोगाथा! (संस्मरण)

- **प्रा. जगदीश घनघाव,** एम् ए ; बी. एड्, सेट .

आंबेडकरवाद की व्याख्या और जीने का तरीका

आंबेडकरवाद की व्याख्या करते हुए मेरा कथन है कि ''पुरोहिताई, पूँजीवाद, हुकुमशाही, तानाशाही, ब्राह्मणशाही और जाति, वर्ण, पंथ, वंशभेद इनको नकारनेवाला, पंचशील, अष्टशील, दसपारमिता सहित धम्म यह जीवनमार्ग हैं, इन बातों पर विश्वास रखनेवाला, लोकतांत्रिक मूल्यों का स्वीकार करनेवाला, शोषित, पीडितों का और स्त्रियों का रक्षण करनेवाला, सारे अल्पसंख्यकों का और हर एक नागरिकों का कल्याण करनेवाला, जातिसंस्था विरहित और वर्णसंस्था विरहित नवसमाज की रचना करनेवाला, देशहितकारक मानवतावादी विचारों की अभिव्यक्ति करनेवाला और बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के तत्त्वज्ञान का पुरस्कार करनेवाले वाद को ही 'आंबेडकरवाद' कहना चाहिए।''

आंबेडकरवाद के अनुसार अपना जीवन जीने वाले लोग हमेशा यश प्राप्त कर लेते हैं। जिंदगी में कुछ भी करके दिखाने की उनमें हिम्मत होती हैं। उनके हौसले बुलंद होते हैं। इस तरह के लोग जिंदगी में कुछ ऐसे करके दिखाते हैं कि सारे लोगों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो जाए। उनका आंबेडकरवाद के प्रति लगाव, उनकी निष्ठा, उनकी त्यागवृत्ति, उनकी प्रचंड मेहनत करने की क्षमता और कर्तव्य निभाने की मनीषा देखकर ही दूसरों को भी वैसे बनने की प्रेरणा मिलती हैं और उनसे प्रेरणा लेकर अपनी जिंदगी का सपना पूरा करने के लिए मेहनत करने के लिए वे प्रेरित हो जाते हैं। ऐसे लोगों की प्रेरणादायी यशोगाथा पढ़ने और समझने के लिए मन भी उतना ही बड़ा और निष्ठावान होना जरूरी होता हैं। ऐसे ही एक आंबेडकरवादी निष्ठावान भीमसैनिक की यशोगाथा शब्दचित्रित करने के लिए उनके सम्यक कार्यों ने हमें प्रेरित किया हैं। उस भीमसैनिक का नाम हैं आयु. राजेश जी घनघाव।

विश्वविख्यात महापंडित, भारतीय संविधाननिर्माता, महामानव, बोधिसत्व डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर इन्होंने कहा हैं कि ''जिस कौम में हमारा जन्म हुआ हैं, उसका उद्धार करना हमारा परम दायित्व बनता हैं। इतना ही नहीं तो उसका उद्धार करने के लिए जो व्यक्ति अपनी जान भी कुर्बान करने के लिए हमेशा तैयार होते हैं, वे धन्य हैं।'' डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी का यह आदेश 'गुरू आदेश' समझकर जिंदगीभर उसी तरह से समाज, संस्कृति, धम्म, शिक्षा आदि क्षेत्रों में अपना महत्वपूर्ण योगदान देने का काम करने के लिए सदैव तत्पर रहना अपना आद्यकर्तव्य माननेवाले एक महानुभाव का नाम है आयुष्मान राजेश जी घनघाव।

पारिवारिक जीवन:

''दुल्लभो पुरिसाजञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति।
यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति।।''

(धम्मपद : लेखक - डॉ.भदन्त आनन्द कौसल्यायन, पृष्ठ क्रमांक.47, सातवां संस्करण : 14 अक्तूबर 1996)

श्रेष्ठ पुरुष का जन्म दुर्लभ हैं, वह सब जगह पैदा नहीं होता। जिस कुल में वह धीर पैदा होता हैं, उस कुल में सुख की वृद्धि होती हैं। यह इस गाथा का भावार्थ हैं। यह गाथा राजेश जी घनघाव के बारे में हम कह सकते हैं। क्योंकि उनके जन्म के बाद उनके माताजी और पिताजी का पारिवारिक जीवन व वातावरण पूर्णत: से बदल गया था। सुखों की और खुशियों की बारिश हुई थी। और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह हैं कि आम लोगों के लिए उन्होंने जो कार्य किया हैं, वह साधारण नही था, बल्कि असाधारण था। बहुत ही कठिनाइयों का सामना करके वे अपने कार्यों में सफल हो चुके हैं। बचपन से लेकर आजतक के उनके सारे जीवन सफ़र के लेखक खुद एक पुख़्ता गवाह हैं।

महाराष्ट्र राज्य के ठाणे जिले के अंतर्गत शहापूर तहसील आता हैं। शहापूर तहसील में समाविष्ट हुए बहुत ही मशहूर ऐसे शिरोल गांव में राजेश जी घनघाव का जन्म 12 मई 1972 में मध्यमवर्गीय बौद्ध धम्म में हुआ। ठाणे जिला मुंबई उपनगर के मुलुंड से लगा हुआ हैं। और मुंबई तो भारत की

आर्थिक राजधानी हैं। जो पूरे विश्व में अपने इतिहास और कर्तृत्व के लिए जानी जाती हैं। ऐसे कहते हैं कि जिनका जन्म बारह तारीख को हुआ हैं, वे लोग यहां के दुष्ट व्यवस्था के और बड़े बड़े कारस्तानी लोगों के बारह बजाते हैं। राजेश जी भी उसे कोई अपवाद नहीं हैं। उनका जन्म भी बारह तारीख को ही हुआ हैं। उनके माताजी का नाम निर्मला घनघाव हैं। निर्मल चरित्र के कारण वह पूरे गाँव में पहचान जाती हैं। अपने स्पष्ट स्वभाव के कारण उनका पूरे गाँव में दबदबा कायम रहा हैं। सभी लोग उन्हें आदर से श भामाताई श कहते हैं। भामाताई यह उनका उपनाम हैं। माताजी उत्तम गृहिणी हैं। घनघाव परिवार के सभी सदस्य और सभी रिश्तेदार उनका सम्मान करते हैं। उनके हर एक बात को महत्व देते हैं। उनके पिताजी का नाम अमृता जी घनघाव हैं। पिताजी उत्तम अध्यापक थे। वे प्राथमिक विद्यालय में एक अध्यापक थे। उन्होंने जिस जिस गांव के स्कूलों में पढ़ाने का सम्यक कार्य किया, वहाँ वहाँ के लोग आज भी उनका नाम बड़े आदर के साथ लेते हैं। उन्होंने पढ़ाये हुए विद्यार्थी आज हर एक क्षेत्रों में अपना नाम रोशन कर रहे हैं। यह बड़ी अभिमान की बात हैं। पिताजी एक आंबेडकरवादी कवि और गीतकार थे। वे आंबेडकरवादी आंदोलनों में शामिल होते थे। आंबेडकरवादी आंदोलन को आगे बढ़ने के लिए वे गीत लेखन करते थे। अपने अभ्यासपूर्ण भाषणों के माध्यम से वे समाज मन में चिंगारी लगाने का काम कर रहे थे। बचपन से ही उनके पिताजी के घर में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के समतावादी आंदोलन और सम्यक कार्यों की चर्चा होती थी। राजेश जी के पिताजी वेलूक गांव के रहिवासी थे। वेलूक गांव सेंट्रल रेलवे महामार्ग के कसारा रेल्वे स्टेशन से लगभग सात - आठ किलोमीटर दूरी पर हैं। वैसे देखा जाए तो कसारा गांव को आंबेडकरवादी आंदोलन का मुख्य केंद्र मानना चाहिए। क्योंकि जब डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर अछुतों के हक़ के लिए लंदन में गोलमेज परिषद में भारतीय अछुतों का नेतृत्व कर रहे थे। अपने राजकीय, सामाजिक, शैक्षिक हक़ और अधिकार के लिए संघर्ष कर रहे थे। उस समय गांधीजी ने गोलमेज परिषद में ब्रिटिश सरकार के सामने खुद की वाहवाही करते हुए कहा था कि वे भारतीय अछुतों की माँ हैं और उस नाते उन्हें अछुतों के कल्याण की चिंताएं हरदम सताती हैं। उनकी ये बातें बिल्कुल गलत थी। गांधीजी उलटी सीधी बातें करने में माहिर थे, ये सभी भारतीय अछुतों को भलीभांति मालूम था। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने उनका सारा षडयंत्र गोलमेज परिषद में सम्मिलित हुए सभी सदस्यों के सामने खोल दिया था। उन्होंने कहा था कि वे सारे भारतीय अछूतों की सगी माँ हैं और आप सौतेली माँ हो।

उनके इस सच्चे कथन से सबके सामने गांधीजी का असली चेहरा सामने आया था।

शिक्षा :

शिरोल गांव में सिर्फ़ सातवीं कक्षा तक ही स्कूल थी। आगे की पढ़ाई करने के लिए खड़ी या कसारा इन गांवों में जाना पड़ता था। ये दोनों छोटे गांव शिरोल गांव से लगभग सात-आठ किलोमीटर दूरी पर थे। राजेश जी खड़ी गांव के स्कूल में पढ़ने जाने लगे।

इक्कीसवीं उम्र में उनकी शादी हो गई थी और इक्कीसवीं ही उम्र में उनको सरकारी नौकरी मिल गई थी।

उल्हासनगर महानगर पालिका में नौकरी करते करते राजेश जी ने अपनी बी. ए तक की पढ़ाई पूरी की। उन्होंने समाजशास्त्र इस विषय में अपनी बी.ए की डिग्री हासिल कर ली और पदवीधर बन गए।

प्रकृति का एक नियम होता हैं और वो सबको अचंभित करनेवाला होता हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो कुछ लोगों का जन्म दूसरों का उद्धार और विकास करने के लिए ही होता हैं। ऐसे लोग अपने परिवार की ओर ज्यादा ध्यान नहीं देते। समाज परिवर्तन की उन्हें एक तरह से बहुत ही प्यास लगी रहती हैं। वो समाज सेवा की प्यास बूझाने के लिए अपनी पूरी जिंदगी दाव पर लगाते हैं। अपनी जान भी देने के लिए हरदम तैयार रहते हैं। लेकिन एक-एक कदम उठाते समय मेरे हाथों से किसीका नुकसान ना हो जाए, इस तरह का ख़याल भी रखते हैं। बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय ये तो उनका एक सर्वोत्कृष्ट ध्येय होता हैं और उसी ध्येय से प्रेरित होकर वे सत्पुरुष अपने कर्तव्य का पालन करते रहते हैं। हर समय ऐसे लोग जागृत अवस्थाओं में रहकर समाज के प्रति चिंतन करते रहते हैं।

राजेश जी भी अपने जिंदगी में पूर्ण विचारों के बाद ही निर्णय लेते हैं। और एकबार निर्णय लेने के बाद उसे बदलने की हिम्मत कोई भी कर नहीं सकता। उन्हें अपने हर निर्णय पर पूरा विश्वास होता हैं।

बुद्ध धम्म का प्रभाव :

तथागत बुद्ध ने कहा था-

''चरथ भिक्खवे चारिकं
बहुजन हिताय बहुजन सुखाय
लोकानुकम्पाय अत्थाय
हिताय सुखाय देव मनुस्सानं''

यह बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय का मकसद पूरा करने के लिए राजेश जी प्रयासरत रहते हैं। बहुजन समाज के हितों और सुखों के लिए सम्यक कर्म करना अपना सम्यक कर्तव्य समझते हैं। राजेश जी ने इस बुद्ध उपदेश को अपना परम दायित्व समझा और उसे ही मद्देनज़र रखतें हुए आज भी धम्म का सम्यक प्रचार और प्रसार करने के लिए वे तत्पर रहते हैं।

सामान्य लोगों के लिए ये सारी बातें निरर्थक होती हैं। वे ऐसी बातों पर ध्यान भी नहीं देते। वे तो अपनी जिंदगी के मजे लेते रहते हैं। उन्हें दूसरों के हितों और सुखों की कोई परवाह नहीं होती। ऐसे लोगों से इतिहास का दूर से भी कोई संबंध नहीं होता। इसीलिए इतिहास भी उन लोगों का ध्यान नहीं रखता। क्योंकि जो लोग अपना क्रांतिकारी इतिहास भूलते हैं, वो कभी भी खुदका इतिहास निर्माण नहीं कर सकते और यही एक परम सत्य हैं। राजेश जी को अपने कौम का पूरा इतिहास अच्छी तरह से मालूम हैं। और इसीलिए समाज में परिवर्तन करने के लिए वे हमेशा अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं।

तथागत बुद्ध ने कहा था कि ''केवल हमने कहा इसीलिए वो सत्य समझकर स्वीकार मत करो, तो उसे अपनी बुद्धि के कसौटियों पर परखकर लो। इतना ही नहीं तो उसे अच्छी तरह से सोचो, समझो और फिर उसका स्वीकार कर लो।''

तथागत बुद्ध की ये सारी बातें अपने ध्यान में रखकर ही जिंदगी में एक-एक कदम उठाते समय राजेश जी हमेशा अपनी बुद्धि का उपयोग करते हैं। सोच समझकर अच्छे लगने वाले विचारों का स्वीकार करते हैं और उसी विचारों से प्रेरित होकर मार्गक्रमण करते चले आए हैं। नाक और कान में जमीन - अस्मान का अंतर होता हैं। यह बात वे अच्छी तरह से जानते हैं। इसीलिए किसी भी तरह से चुगलखोर लोगों से दो हाथ दूर ही रहते हैं। उन्हें छोटा-बड़ा यह भेद मान्य नहीं हैं। गरीब-अमीर इन भेदों को तो वे मानते भी नहीं हैं। हम सब लोकतांत्रिक देश में रहते हैं, यह बात वे कभी भी भूलते नहीं। इसीलिए सबके साथ घुलमिलकर रहना हमेशा पसंद करते हैं। हम सब भारतीय हैं इस बात को बार बार दोहराते हुए सभी को प्रेरित करते हैं। पर अपना मित्र कौन हैं और अपना शत्रु कौन हैं ये सब परखने की सम्यक दृष्टि उन्हें बुद्ध तत्त्वज्ञान और आंबेडकरवाद से ही प्राप्त हो चुकी हैं। जो जिंदगी के हर एक क्षेत्र में उपयुक्त होनेवाली होती हैं। जिसे ऐसी सम्यक दृष्टि प्राप्त होती हैं, वो शख्स किसी को भी अच्छी तरह से पहचान लेता हैं। यह भी सच हैं कि ऐसे शख्स कभी किसी का बुरा भी नहीं करते और बुरा करना भी नहीं चाहते। कुछ लोगों ने भले ही उनके बारे में कुछ उलटी-सीधी बाते भी कर ली, तो भी उन्हें उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि समाज में ऐसे समाज द्रोही लोगों की कमी नहीं हैं, ये सत्य राजेश जी अच्छी तरह से जानते हैं।

अपने गांव के 'प्रबुद्ध ग्रामस्थ मंडल' का अध्यक्ष पद इन्हें प्राप्त हो चुका था। भारतीय बौद्धों की मातृसंस्था 'दि बुद्धिस्ट सोसायटी ऑफ इंडिया' इस मातृसंस्था के वे अपने गांव के अध्यक्ष थे। अपने गांव के बुद्ध विहार को पुनर्स्थापित करके उसे नया रूप दिया और उसमें थाईलैंड की बुद्धमुर्ति को स्थापित किया। अब गांव में वे सभी को साथ लेकर बुद्ध - फुले - शाहु - आंबेडकर जयंति, महामाता सावित्रीबाई फुले, महामाता भीमाबाई, महामाता रमाबाई जयंति और हर एक बौद्ध पौर्णिमा मनाते हैं।

ग़रीब, दुखित और पीडितों के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार

ग़रीब, दुखित और पीडितों को देखकर उनके मन में बोधिसत्व के जैसी करुणा जाग्रत होती हैं। ऐसे लोगों के लिए वे हमेशा मददगार साबित हो गए हैं। उनके हर एक अच्छे काम के लिए वे अपना अमूल्य समय खर्चा करते हैं। जिन जिन लोगों को उन्होंने नौकरियों पर लगाया, वे सभी लोग आज भी राजेश जी का हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। इतना ही नहीं उनके सम्यक कार्यों का गुणगान भी करते हैं। लेखक ने खुद इस बात का अनुभव किया हैं। अपने पिताजी के नाम की 'स्मृतिशेष अमृता सुकाजी घनघाव गुरुजी लोकसेवा प्रतिष्ठान' की उन्होंने स्थापना की हैं। इस संस्था के माध्यम से उन्होंने अपने पिताजी के स्मृतिदिन के निमित्त अनेक स्कूलों में कापी, पुस्तकें और पेन सप्रेम भेट दिये हैं। हर साल एक गांव की स्कूल का चयन किया जाता हैं। और उस स्कूल के जितने भी ग़रीब हो या अमीर हो सभी विद्यार्थियों को शालेय चीजों का वितरण किया जाता हैं। इस वितरण के लिए संस्था के सभी सदस्यों को लेकर राजेश जी निहित स्कूल में जाते है। राजेश जी के हाथों से वितरण की

शुरुआत की जाती हैं। बाद में सभी सदस्य और संबंधित गांव के कुछ प्रमुख लोगों के हाथों से शालेय चीज़ों का वितरण किया जाता हैं लेखक खुद भी उसमे शामिल होते हैं। अपने पिताजी के नाम से स्थापित हुई इस संस्था के माध्यम से एक बड़े स्कूल का निर्माण करने की राजेश जी और उनके सारे सदस्यों की मनोकामना हैं।

राजेश जी का नाम बहुत बड़े बड़े अधिकारियों तक पहुंच गया हैं। बड़े बड़े अधिकारी और विधायक, सांसद व मंत्री महोदय उनके शब्दों को महत्व देते। जो भी व्यक्ति उनका नाम अधिकारियों व मंत्रियों को बताते हैं, उन लोगों का काम सफल हो जाता हैं। और यह बात तो खुद राजेश जी को भी मालूम नहीं पड़ती। लेखक ने खुद ऐसी अनेक घटनाएं उनके कई मित्रों से सुनी और देखी भी है। राजेश जी के बारे में लोगों के मन में आदरयुक्त भाव हैं, इस बात का अनुभव कितनी बार दृश्यमान हुआ है। उन्होंने कमाई हुई इन्सानियत यही उनकी एकमात्र जायदाद है और उसी जायदाद का उन्हें बड़ा ही अभिमान हैं। हमारे नाम पर कितना पैसा हैं यह मायने नहीं रखता। पर हमने ज़िंदगी में कितने लोगों को जोड़ दिया हैं। हमने कितने लोगों का भला किया हैं। हमे कितने लोग मानते हैं इस बात का हमेशा ज़िक्र किया जाता था। इसीलिए समाज के हर एक क्षेत्रों में राजेश जी के नाम का हमेशा जिक्र किया जाता हैं।

राजनीतिक दल में प्रवेश

राजकार्य यह समाज सुधारने की गुरूचाबी हैं इस डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के महान विचारों को अपना उद्देश्य समझकर उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करना आरंभ किया। सन 1994 का समय होगा। सन 2001 मे राजेश जी और उनके दोस्तों ने मिलकर डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर इनके संकल्पनोंओ से प्रेरित Republican party of India (A) इस राजकीय दल की अपने गांव में एक शाखा शुरू की थी। उद्घाटन करने के लिए सासंद रामदास जी आठवले साहब आये थे। लेखक खुद उस घटना के गवाही हैं। लेखक उस समय एम्. ए भाग - एक का अध्ययन कर रहे थे। उनकी एम्. ए की परीक्षा भी उसी समय शुरू हुई थी।

लेकिन राजेश जी का राजनीतिक माहौल में ज्यादा समय तक मन नहीं लगा और उन्होंने उसका इस्तीफा देने का निर्णय लिया।

सरकारी नौकरी :

समकालीन राजनीतिक वातावरण बहुत ही स्वार्थपरायण था। स्वार्थी और दुर्गंधित राजनीतिक वातावरण देखकर उनका मन उसमें ज्यादा समय तक कोई कार्य करने के लिए तैयार नहीं हुआ। यह तो एक कारण था ही, पर दूसरा भी एक कारण था और वह था सरकारी नौकरी का। इक्कीसवीं उमर में उनको सन 1994 में उल्हासनगर नगरपालिका में नौकरी मिल गई थी। उसी साल उन्हें पुत्रप्राप्ति का लाभ भी हुआ था। ये दो घटनाएं उनके पारिवारिक जीवन में पूर्ण रूप से परिवर्तन कर चुकी थी। जब वे नगरपालिका में काम कर रहे थे, तब वे टेम्परारी काम कर रह थे। लेकिन उसी साल के कुछ ही महिनों में ये नगरपालिका महानगरपालिका में परिवर्तित हो गई और राजेश जी के मन का कोई ठिकाना नहीं रहा। उनका मन आनंद से झूम उठा। उनका आनंद पूरे अस्मान में फैल गया। उनके माता और पिताजी को बेहद खुशी हुई। उनके भाईयों और बहनों को भी बहुत खुशी हुई। जब राजेश जी नौकरी पर लगे थे, तब वे टेम्परारी काम कर रहे थे। पर जब उन्हें लड़का हुआ, तब वे पर्मनण्ट हुए थे। कार्यलय से जब वे अपने घर पहुंचे तो उनके एक हाथ में पर्मनण्ट नौकरी की ऑर्डर थी और दूसरे हाथों में पेडों (मिठाई) की थैली थी।

शुरू में राजेश जी उल्हासनगर महानगरपालिका में चपरासी की नौकरी कर रहे थे। अपने काम के प्रति निष्ठा रखने के कारण उनका काम सभी अधिकारियों का मन जीतने लगा। इसी बदौलत आज वे वहीं अफसर बन गए हैं। इसके लिए उन्होंने बहुत बड़ा त्याग किया हैं। चपरासी से लेकर अधिकारी तक का उनका सफर बहुत ही रोमांचकारी रहा है।

पिताजी का परिनिब्बाण :

सन 1993 में राजेश जी घनघाव की शादी प्रमिला जगताप नाम के उल्हासनगर (ठाणे जिला) के एक युवती से हुई थी। उनकी पत्नी सोलापुर जिले के नजदीक कर्डुवाडी नामक गांव की रहने वाली थी। वहां से कुछ दूरी पर मराठी संत कवि चोखामेला का मंगलवेढा गांव है। शादी होने के कुछ दिनों के उपरांत ही उनके पिताजी ने स्कूल से स्वेच्छानिवृत्ती ली थी और वे घर पर ही अपना जीवन काल बीता रहे थे। इसी साल में उन्होंने अपना नया घर बनाने का सम्यक संकल्प किया। वैसे तो नौकरी करते करते उन्होंने आहिस्ते आहिस्ते कभी इट, कभी रेत, तो कभी सीमेंट, तो कभी पत्थर जमा करने का कार्य शुरू किया था। घर का नीव बाँधने का कार्य पहले ही करके रखा

था। सन् 1993 में पिताजी ने अपने सपनों का घर बाँधने का कार्य पूरा किया और अब उन्हें बहुत बड़ा आनंद हुआ। क्योंकि नौकरी करते करते उनके हाथों से यह बहुत बड़ा कार्य पूरा हो गया था। सबसे महत्वपूर्ण बात तो ये हैं कि जिस काल में कई लोग अपनी जमीन बेचके या रिटायर्ड होने के बाद घर बनवाया करते थे। उसी काल में खुद के कड़ी मेहनत से उनके पिताजी ने घर बनवाया था।

आंबेडकरवाद को मद्देनजर रखते हुए उन्होंने सच्चे दिल से अपना उत्तरदायित्व निभाया था। खुदके खुशी के लिए उन्होंने कभी भी दूसरों का सुकून छिना नहीं। अपना कार्य सफल करने के लिए दूसरों को तकलीफ़ नहीं दी। क्योंकि आंबेडकरवाद कभी भी दूसरों को तकलीफ़ नहीं देता, वो तो सबकी उन्नति करता हैं। ऐसे क्रांतिकारी आंबेडकरवाद का जो सच्चे दिल से स्वीकार करता हैं, उसका हमेशा भला ही होता हैं। सन् 1995 का साल राजेश जी और उनके परिवार के जीवन में बहुत ही दुखदायी काल था। क्योंकि इसी साल में उनके प्राणप्रिय व आदरणीय पिताजी को पक्षपात का आघात हुआ था। परिवार के सभी सदस्यों को वो बहुत बड़ा झटका लग गया था। इस घटना ने उनके परिवार के सदस्यों को बहुत ही दुख हुआ था। लेकिन ऐसी विपरीत परिस्थितियों में संयम कैसा रखना चाहिए यह तो वे सभी जानते थे।

आंबेडकरवाद का घनघाव परिवारों के सदस्यों पर प्रभाव:

सन 1995 का साल था। राजेश जी ने अपने मन में एक बात ठान ली थी कि मैं उमरमाली और थानशिट रेलवे स्टेशन मंजूर करके ही रह जाऊंगा। चाहे मेरा कुछ भी हो जाए पर मैं अपने संकल्प से जरा भी हट नहीं जाऊंगा। ब्रिटिश काल से कल तक उमरमाली और तानशेत ये दो रेलवे स्टेशन सिर्फ़ नाम के लिए ही रेलवे स्टेशन थे। पर वहां रेलवे स्टेशन के लिए जो सुविधाएं उपलब्ध होती हैं वे नहीं मिलती थी। क्योंकि वे दोनों स्टेशन्स कच्चे थे। लेकिन रेलवे प्रवासियों के उतरने और चढ़ने के लिए कुछ भी सुविधाएं नहीं थी। ट्रेन्स रूकने के बाद लोग उपर से छलाँग लगाकर नीचे उतरते थे। बहुत ही जटिल समस्याओं ने लोगों को घेरा था। सिर्फ़ कुछ ही ट्रेन्स रूकती थी। एक एक ट्रेन में एक एक या दो दो घंटों का अंतर रहता था। कभी कभी ट्रेन्स रद्द भी होती थी। रेलवे प्रवासियों के दुखों का, उनके तकलीफों की किसीको नहीं पड़ी थी।

क्या हुआ था इस साल में यह देखना काफ़ी महत्त्वपूर्ण और रोमांचकारी होगा। ऐसी कौनसी घटना घट चुकी थी कि राजेश जी को उमरमाली रेलवे स्टेशन मंजूरी के लिए वो बाध्य कर रही थी। सदा प्रेरित कर रही थी। इस साल में उनके प्राणप्रिय आदरणीय पिताजी को पँरालिसेस का झटका लगा था। उसमें उनके पिताजी का दाहिने हाथ और पैर बिल्कुल निकम्मे हो चुके थे। मुँह भी एक तरफ टेड़ा हो चुका था। इतनी बुरी हालात देखकर राजेश जी और उनके परिवार के हर एक सदस्यों को एक बहुत बड़ा मानसिक सदमा लगा था। सब मानसिक तनाव में आए थे। लेखक खुद घर के एक कोने में छोटे बच्चे की तरह जोरजोर से रो रहे थे। बचपन से पिताजी ने अपने सभी लड़कियां और लड़कों को लाड़ प्यार से पाला पोसा था। अपने बच्चों से वे बेहद प्यार करते थे। हर एक मातापिता अपने बच्चों को कभी ना कभी मारते हैं, पिटते हैं। लेकिन यह पिताजी उनमें से एकमात्र अपवाद थे। उन्होंने अपने बच्चों को कभी मारापीटा नहीं। यह बड़ी आश्चर्य की बात थी। बच्चों को कभी उलटा सीधा कहा नहीं। क्या कभी ऐसे भी पिताजी होते हैं? हां, लेकिन वे इस तरह के पिताजी थे। इतना ही नहीं तो उन्होंने अपने पोता और पोतियों को भी कभी डांटा नहीं , मारने की तो बात ही काफ़ी दूर!

शिक्षा का महत्व वे भलिभांति जानते थे। क्योंकि वे एक प्राथमिक विद्यालय के उत्तम और सद्‌गुणी शिक्षक थे। उनके मन में विद्यार्थियों के प्रति बहुत ही प्यार था। खुद के जेब से ग़रीब विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें, कापी, पेन आदि शैक्षिक साहित्य खरीद कर वे बांट देते थे। इसका मतलब ये नहीं हैं कि वे घर के बहुत बड़े अमीर थे। वे तो मध्यमवर्गीय बौद्ध परिवार से थे। ग़रीबी में ही वे पले थे, बढ़े हुए थे। गरीबी क्या होती हैं, ये वे भलिभांति जानते थे। इतनी गरीबी होते हुए भी वे पढ़ें-लिखे। प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते करते वे अध्यापक बने थे। ग़रीबी उनका कुछ भी उखाड़ नहीं सकी। घनघाव परिवार के वे प्रथम शिक्षक बन गए। आज भी घनघाव परिवार के हर एक सदस्यों को उनके प्रति अभिमान हैं। ग़रीबी को उन्होंने नजदीकी से देखा था। इस बात का उन्हें अच्छी तरह से ख़याल था। इसीलिए वे गरीब और शोषित पीडित वर्गों के बच्चों के शिक्षा के लिए अपना योगदान दे रहे थे। बचपन से ही ऐसे लोगों को मदद करना ये बातें वे अपने पिताजी सुकाजी बारकु घनघाव जी से सीखें थे। उनके पिताजी सुकाजी बारकु घनघाव आंबेडकर युग के साक्षी थे। वे कसारा गांव से लगभग

सात-आठ किलोमीटर दूर बसे हुए निसर्ग रम्य वेलूक गांव के मूलनिवासी थे। कसारा यह गांव शहापुर तहसील का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। ये कसारा गांव आंबेडकरवादी आंदोलन का मुख्य केंद्र था। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यहां आया करते थे। वैसे सबूत इतिहास में आज भी मौजूद हैं। कसारा गांव में जब महापुरुष विश्वरत्न डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर इनकी सभा होती थी, तब आदरणीय सुकाजी घनघाव अपने बच्चों को बाबासाहेब के समाज परिवर्तन लानेवाले क्रांतिकारी भाषणों को सुनने के लिए अपने साथ लेकर जाया करते थे। अमृता सुकाजी घनघाव गुरुजी इनका जन्म 12.07.1943 में हुआ था। वे भी अपने पिताजी के साथ बाबासाहेब के क्रांतिकारी भाषणों को सुनने के लिए जाया करते थे। ऐसे भाषण सुनते सुनते ही वे काव्य लेखन करने लगे थे। उस वक्त जलसा जिसे क्रांति का एक हिस्सा माना जाता हैं। उसमें शामिल होकर उसका प्रयोग वे समाज परिवर्तन करने के लिए किया करते थे। उसके लिए वे गीत लेखन करने लगे। लेखक ने खुद अपने पिताजी अमृता सुकाजी घनघाव के मुख से ऐसे क्रांतिकारी गीत सुने है। वे काफ़ी मधूर स्वर में गीत गाते थे। बाबासाहेब के विचारों को अपने गीतों से मुखरित कर रहे थे। लेकिन लेखक की उम्र बहुत ही कम थी इसलिए उन्हें यह नहीं समझा कि पिताजी का यह गीतरुपी ख़जाना हमारे आंबेडकरवादी आंदोलन का इतिहास मुखरित करनेवाला हैं। इसे संभाल कर रखना चाहिए इस बात का कोई भी ख़याल मन में आया नहीं। लेकिन आज जब लेखक अपना आंबेडकरवादी साहित्य पढ़ता है तो उसे अपने पिताजी की बहुत ही याद आती हैं। क्योंकि आंबेडकरवाद क्या हैं इसका पाठ उनके पिताजी ने बचपन में ही घर के सभी को अच्छी तरह से पढ़ाया था।

ऐसी ही एक महत्वपूर्ण घटना अमृता सुकाजी घनघाव इन्होंने अपने छोटे बच्चे कवि, लेखक, समीक्षक प्रोफेसर जगदीश घनघाव जी को बताई थी रू जो उनको उनके पिताजी ने बताई थी। सन 1930-32 में लंदन में गोलमेज परिषद संपन्न हो रही थी। उस वक्त भारत के बहुत बड़े नेताओं को लंदन के गोलमेज परिषद के लिए बुलाया गया था। उनमें हिंदू, मुस्लिम , विविध अल्पसंख्यकों के लीडर और अछूत वर्गों के लीडर डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर इनको भी खासकर बुलाया गया था। उस गोलमेज परिषद में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर इन्होंने अछुतों के सर्वांगीण विकास के लिए अपने विचार प्रकट किये थे। उनके लिए कुछ अधिकारों की मांग की थी। ताकि भारतीय अछुतों को देश के मुख्य प्रवाह में लाया जाए। पर गांधीजी ने उनके इस कल्याणकारी विचारों को रोकने के लिए पूरा कसकर विरोध किया था। ऐसा करना गांधीजी का स्वभाव बन चुका था। यदि डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर इन्होंने मांग किये हुए अधिकार अछुतों को मिल पाते तो आज भारत देश का इतिहास कुछ और होता।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने गोलमेज परिषद में अपने क्रांतिकारी विचारों से ब्रिटिश सरकार को अपने अछूत लोगों के कल्याण के लिए कुछ हक़ माँगे। उन्होंने अछूत वर्गों का उद्धार करने के लिए संयुक्त मतदारसंघ की माँग की और ब्रिटिश सरकार ने उनकी माँग पूरी करने का फैसला लिया। लेकिन गांधीजी ने उसे विरोध करने के लिए पूना के येरवडा जेल में आमरण अनशन करना शुरू किया। भारतीय अछूत अछूत ही रह जाए। उनमें कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए। उनका किसी भी तरह से विकास नहीं होना चाहिए इस तरह की घटिया सोच के गांधीजी थे। इस बात को डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर अच्छी तरह से जानते थे।

जब डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने हस्ताक्षर अभियान का आंदोलन चालू किया था। उस वक़्त बाबासाहेब कसारा गांव में आए थे। अपने हक़ के लिए अपने लोगों में प्रेरणा जाग्रत करने और उनको अन्याय के ख़िलाफ़ लडने के लिए प्रेरित करने के लिए वे खूब कोशिश कर रहे थे। उस वक्त अमृता घनघाव जी के पिताजी सुकाजी घनघाव जी अपने भाइयों के साथ कसारा गांव में बाबासाहेब के आंदोलन में शामिल होने के लिए गए थे।

रेलवे स्टेशनों के लिए कठिन संघर्ष और सफ़लता :

राजेश जी अपने परिवार के परवरिश के कारण एक तरफ से नौकरी कर रहे थे, तो दूसरी तरफ से लाखों रेलवे प्रवासियों की सुविधाओं के लिए रेलवे स्टेशनों के लिए अपना संघर्ष कायम रखने के लिए कटिबद्ध हो गए थे। वैसे देखा जाए तो वे सन 1987-88 साल से वे रेलवे प्रवास कर रहे थे। बचपन से ही कड़ी मेहनत करने के कारण वे अपना अमूल्य योगदान रेलवे प्रवासियों के हक़ के लिए लड़ने के लिए दे रहे थे। यह सच हैं कि उनके प्रशासकीय काम का पुख्ता अनुभव रेलवे प्रवासियों के हक़ और अधिकार के लिए लड़ने में काम आया।

सन 1993 से नौकरी करते समय उन्हें रेलवे प्रवास

करने के सिवाय दूसरा विकल्प नहीं था। सन 1995 में उनके पिताजी को पैरालिसिस का आघात लगा था। उन्हें ठाणे जिले के अस्पताल में अँडमिट करवाया गया था। वहां से जब पिताजी अच्छे हुए, तब वे अपने पुत्र राजेश जी बोले, ष्राजा, अब हमें रेलवे ट्रेन से सफर करना है, मोटार गाडी से नहीं ।राजेश जी को घर के और रिश्तेदार के सभी लोग बडे प्यार से श राजा श कहते है। राजेश जी ने उनके पिताजी से कहा कि, ष्लेकिन पिताजी, अपने उमरमाली रेलवे स्टेशन पर तो कुछ ही ट्रेन्स रुकतीं हैं, सभी ट्रेन्स नहीं रुकतीं । हमें मोटार गाडी से ही अपने घर जाना पडेगा । पर पिताजी सुनने के लिए राजी नहीं थे । अब करे तो क्या करे इस सोच में राजेश जी पड गए। उन्होंने मन में एक सम्यक संकल्प किया कि मैं श्उमरमालीश और श्तानशेतश ये दो रेलवे स्टेशन बनवाकर ही रह जाऊंगा और अपने पिताजी की इच्छा पूरी करुंगा।

सन 2001 का साल था। तानशेत स्टेशन पर एक रेलवे दुर्घटना घटी थी। ये तानशेत रेलवे स्टेशन खर्डी और आटगांव रेलवे स्टेशन के बीच में हैं। लगभग सात -आठ आदमियों को कसारा से सी.एस.टी जानेवाली ट्रेन ने जगह पर ही रगड़ डाला था। रेलवे स्टेशन न होने के कारण लोग रेलवे ट्रैक पर ही बैठ गए थे। उस समय वातावरण में बहुत ही कोहरा छाया हुआ था। इसी कारण लोगों को कसारा से तानशेत रेलवे स्टेशन पर आयी हुई सी.एस.टी ट्रेन दिखाई नहीं दी। परिणामस्वरूप रेलवे ट्रैक पर बैठे हुए लोग ट्रेन के नीचे आए और उन सभी रेलवे प्रवासियों की एकसाथ मौत हो गई। इस दुर्घटना की ख़बर आजूबाजू के गांव और शहरों तक पहुंच गई थी। समाचार पत्रों और टी.व्ही चौनलों ने अपने अपने तरीकों से इस घटना को लोगों तक पहुंचा दिया था।

सारा वातावरण दुखमय हो गया था। सभी रेलवे प्रवासी ये दृश्य देखकर चकित हो गए थे। जिनके घर के लोग ट्रेन के नीचे कुचल गए थे, उनके दुखों का कोई अंदाजा भी नहीं लगा सकता था। सारा वातावरण शोकाकुल हुआ था।

इसी समय लेखक खुद दूसरी कसारा ट्रेन से ठाणे शहर जा रहे थे। उल्हासनगर के अपने मित्र योगेश गायकवाड़ के साथ एम.ए - भाग एक की कुछ किताबें खरीदने जा रहे थे।

ब्रिटिश काल से कल तक उमरमाली और तानशेत इन दो रेलवे स्टेशनों पर सिर्फ़ कुछ ही ट्रेन्स रूकती थी। बाकी की ट्रेन्स कसारा से निकलकर खर्डी रेलवे स्टेशन और खर्डी रेलवे स्टेशन से निकलकर आटगांव रेलवे स्टेशन के आगे चले जातीं थी। आगे हर एक रेलवे स्टेशन पर रूकती थी। इन दो रेलवे स्टेशनों पर हज़ारों रेलवे प्रवासी अपनी नौकरी करने के लिए कल्याण, डोंबिवली, ठाणे, कुर्ला, घाटकोपर, दादर और सी. एस.टी तक जाते थे। लेकिन उनकी मुश्किल उलझनों का किसीको कोई लेना देना नहीं था।

इन सारी घटनाओं के कारण राजेश जी के मन में यह विचार आया कि यदि वहाँ पर रेलवे स्टेशन होते तो शायद ऐसी दुर्घटनाएँ नहीं घटती। इस घटना के बाद उन्होंने उन दिनों जो रेलवे संघर्ष कमिटी थी, उसमें उन लोगों को न्याय देने के लिए कमिटी के सामने कुछ प्रस्ताव रखे। उस मिटिंग में राजेश जी भी मौजूद थे। उन्हें वहाँ पर खासकर बुलाया गया था। सन 2001 का साल था। उस समय ष्कल्याण-कसारा रेलवे प्रवासी संघटनाष्का अँक्शन कमिटी का प्रमुख पद सभी पदाधिकारियों ने राजेश जी को बड़े आनंद के साथ सुपूर्द किया गया।

ता. 29 अगस्त 2008 में 'कल्याण -कसारा रेल्वे पैसेंजर्स वेल्फेयर असोसिएशन' की स्थापना की गई। राजेश जी का काम के प्रति अच्छा लगाव देखकर कमिटी ने उनको बहुत जल्दी कुछ सात-आठ महीनों में ही उन्हें अध्यक्ष पद बड़े आनंद के साथ सुपूर्द किया। फिर राजेश जी ने अपने काम का तरीका दिखाने शुरू किया। कुल मिलाकर उन्होंने पाँच सालों तक वहाँ पर काम किया।

'उपनगरीय रेल्वे प्रवासी महासंघ' इस नये रेलवे संगठन की स्थापना उनके ही सहयोग से हुई। वे उपाध्यक्ष पद पर काम कर रहे हैं। 7500000 लाख रेलवे प्रवासियों के सुविधाओं के लिए यह संगठन कार्य कर रहा हैं। रेलवे कर्मचारियों के लिए काम करने वाली दस बाराह संगठनों को संगठित करके इस महासंगठन का निर्माण किया गया था।

सन 2010 में तत्कालीन रेलमंत्री ममता बँनर्जी से मिलने के लिए राजेश जी अपने एक शिष्टमंडल को दिल्ली ले गए थे। उनके साथ उस समय सांसद सदस्य आयु. सुरेश जी टावरे, सांसद सदस्य आयु. आनंद जी परांजपे व सांसद सदस्य आयु. बलीराम जी जाधव इन सांसद सदस्यों ने राजेश जी की भेट रेलवे बोर्ड के चेअरमैन से करवा दी थी। उन्होंने उनके सामने अपनी सारी समस्याएं रखी। लेकिन उस समय रेलमंत्री कुछ काम के लिए बाहर गए थी। इसीलिए उनसे मुलाकात नहीं हो पायी।

ता. 30 अगस्त 2015 में कल्याण रेलवे स्टेशन क्रमांक एक पर रेलवे प्रशासन के विरुद्ध में राजेश जी ने आंदोलन छेड़ दिया था। स्थानीय विधायक मा. नरेंद्र जी पवार साहब ने स्टेशन पर आकर राजेश जी और उनके साथियों से बातचीत की। उन्होंने कहा कि, ''राजेश जी, आपकी केंद्रीय रेलमंत्री सुरेश जी प्रभु से हम भेट करवाकर देगें।'' तब उन्होंने अपने साथियों से कहा कि, ''विधायक मा. नरेंद्र जी पवार साहब एक बहुत ही अच्छे आदमी हैं। वे जो बोलते हैं, वो करते भी हैं। इसीलिए हमें उनके उपर पूरा भरोसा करना चाहिए। हम हमारा आंदोलन आज के लिए स्थगित करते हैं।'' उनके सभी साथियों ने जोरों से तालियां बजाकर उनका तहेदिल से स्वागत किया।

ता. 30 सितंबर 2015 में दिल्ली में विधायक मा. नरेंद्र जी पवार इन्होंने तत्कालीन रेलमंत्री मा. सुरेश जी प्रभु से राजेश जी की भेट करके दी। पवार साहब जैसे बोले, वैसा ही उन्होंने करके दिखाया। वचन के पक्के आदमी हैं वो। उस समय राजेश जी के साथ नंदकुमार देशमुख, लता आरगड़े, मनोहर शेलार यह उनकी रेलवे संगठन के कुछ पदाधिकारी भी मौजूद थे। सबसे खुशी की बात तो यह हैं कि रेलमंत्री सुरेश जी प्रभु से बातचीत करने का सब अधिकार पवार साहब ने राजेश जी को दिया था। सर्व प्रथम राजेश जी ने प्रभु साहब का अभिनंदन किया। क्योंकि प्रभु साहब ने उनके मतदालसंघ के कुछ दस बारह रेलवे स्टेशनों को मंजूरी दी थी। फिर राजेश जी ने कहा कि, ''प्रभु साहब, आप तो महाराष्ट्र के सुपुत्र हो। और महाराष्ट्र के ही सेंट्रल रेलवे महामार्ग पर स्थित उमरमाली और थानशिट इन दो रेलवे स्टेशनों को आपको मंजूरी देनी होगी।''

प्रभु साहब ने तुरंत रेलवे बोर्ड के पदाधिकारियों को बुलाया और उनसे कहा कि, ''राजेश जी की जो मांगे हैं, जो काम है, उनका काम तुरंत पूरा किजिये।''

परंतु आठ - दस महीने हो गए। फिर भी काम का कुछ पता नहीं, यह सोचकर राजेश जी चिंतित हो गए। वे दुबारा विधायक नरेंद्र पवार साहब को लेकर दिल्ली में भारत के केंद्रीय रेलमंत्री मा. सुरेश प्रभु साहब से मिलने गए। पर विभागीय स्तर पर कोई हलचल नहीं हुई यह देखकर राजेश जी ने तत्कालीन प्रधानमंत्री, केंद्रीय रेलमंत्री, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री, स्थानीय सांसद सदस्य, लोहमार्ग आयुक्त, रेलवे सुरक्षा बल के आयुक्त, ठाणे जिला अधिकारी, शहापुर तहसीलदार इन कार्यालयों में सबको एक साथ लिखित पत्र भेज दिए। उसमें लिखा था कि उमरमाली रेलवे स्टेशन पर ता. 01 जनवरी 2016 में दस हजार रेलवे प्रवासियों को लेकर हम रेल रोकों आंदोलन करेंगे। उनमें बालवाड़ी, अंगणवाड़ी, विद्यालय, महाविद्यालय, वृद्ध महिला और पुरुष ये सभी शिरोल, अजनुप और थानशिट रेलवे स्टेशन के परिसर के आजूबाजू के पैंतीस - छत्तीस गांवों के लोग शामिल होने वाले हैं इस तरह का इशारा दिया।

इशारे से डरकर तुरंत उमरमाली रेलवे स्टेशन पर कल्याण के लोहमार्ग व रेलवे सुरक्षा आयुक्त इन्होंने आकर आंदोलकारियों को समझाने की कोशिश की। पर कोई भी मानने को तैयार नहीं हुआ। यह देखकर उनके होश उड़ गए।

इसी दरमियान एक एक, दो दो, तीन तीन महीनों में रेलवे मिटिंग्ज होनी लगी। लेकिन उसमें भी कुछ सदस्यों ने कहा कि उमरमाली और थानशिट रेलवे स्टेशन का बांधकाम मंजूर नहीं हो सकता। यह बातें सुनकर राजेश जी को बहुत दुख हुआ। क्योंकि कुछ सदस्य चतंबजपबंसूवता नहीं कर रहे थे। सिर्फ़ बातें करने में वे माहिर थे। यह सारी बातें उनके ध्यान में आयी। इन सदस्यों का काम के प्रति कुछ लगाव नहीं यह देखकर उन्होंने सोचा कि अब हमें ही कुछ करना पड़ेगा। क्योंकि राजेश जी ने अपने पिताजी को वचन दिया था कि वह उमरमाली और थानशिट रेलवे स्टेशन मंजूर करके ही रहेगा। ऐसी स्थिति में राजेश जी के मन में एक विचार आया कि हमें ही एक क्रांतिकारी रेलवे संघठन का निर्माण करना चाहिए।

एक दिन उन्होंने अपने कुछ नज़दीकी सदस्यों के सामने अपने मन की बातें रखी। उन्होंने उन्हें अपना समर्थन करते हुए कहा कि हम सब सदस्य आपके साथ हैं। और ता. 11 अप्रैल 2016 में 'कल्याण-कसारा-कर्जत रेल्वे प्रवासी संघटना' की उन्होंने स्थापना की। संक्षिप्त रूप में जिसे 'के' कहा गया। इस नये रेलवे संगठन की स्थापना हुई। इसी संक्षिप्त रूप से यह संगठन आज बहुत ही मशहूर हैं। यह नाम उल्हासनगर के रहनेवाले और पत्रकारिता क्षेत्र में बहुत ही मशहूर पत्रकार मँक्स महाराष्ट्र के संपादक किरण जी सोनवणे ने सुझाया था। लेकिन राजेश जी ही उसके असली संगठनकर्ता थे। वे इस संगठन के संस्थापक अध्यक्ष थे। सभी सदस्यों ने उनके अध्यक्षता में काम करने का उनकों वचन दिया था। सामाजिक न्याय के लिए लड़ने वाले सत्य शोधक क्रांति पुरुष, महामानव जोतिराव गोविंदराव फुले जी के जन्मदिन के मंगल

अवसर पर इस संगठन की स्थापना हुई।

एक साथ सबको पत्र व्यवहार करने के कारण मुंबई विभागीय रेलवे व्यवस्थापक, जनरल मैनेजर इनके ऊपर सब जगहों से दबाव आया। इसीलिए DRM के ऑफिस में ता.27 दिसंबर 2016 में तुरंत एक बैठक बुलाई गई। उस समय वह विधायक नरेंद्र जी पवार, के. के संस्थापक - अध्यक्ष राजेश जी घनघाव, श्याम उबालें (सेक्रेटरी), चंद्रकांत जाधव (सल्लागार), विशाल जाधव (कोषाध्यक्ष), राहुल दोंदे (सहसचिव), मंगेश पाटिल (उपाध्यक्ष), सचिन जाधव (वासिंद स्थानीय प्रतिनिधि)

ये सब पदाधिकारी उपस्थित थे। उस वक़्त राजेश जी बोले कि, ''भारतीय संविधान ने हमें जो हक़ दिये, वहीं हम माँग रहे हैं। जबतक आप हमारी माँगें पूरी नहीं करेंगे, तबतक हम स्वस्थ नही बैठेंगे।''

इस मिटिंग के लिए उन्नीस तरह के विविध अधिकारी उपस्थित थे। राजेश जी आगे बोले कि, ''कल्याण-कर्ज़त-कसारा शटल रेलवे सेवा कब शुरू करोगे? आज हाथ जोड़कर बिनती करता हूँ। लेकिन बाद में यही हाथ जब मुक्त हो जाएंगे, तो आपको बहुत ही महंगे साबित हो सकते हैं।'' यह सुनकर क्ट्ड जी को बहुत पसीना छुटा। उन्होंने आगे कहा कि, ''जब तक लिखित रूप से हमें आप से कोई सबूत प्राप्त नहीं होता, तब तक हम स्वस्थ नहीं बैठेंगे।''

परंतु 27 दिसंबर 2017 के मिटिंग में उन्होंने तटस्थ भूमिका ली थी। चार से छह महीनों तक आपकी माँगे पूरी हो जाएगी ऐसा हमें उन्होंने वचन दिया था, पर काम बिल्कुल नहीं हुआ। रेलवे स्टेशनों के मंजूरी का उन्हें बेसब्री से इंतज़ार था।

तकरीबन 2 दिसंबर 2018 को उमरमाली और थानशिट रेलवे स्टेशनों की अंतरिम मंजूरी के लिए क्ट्ड जी ने रेलमंत्री सुरेश प्रभु के पास ये लिखित रूप से प्रस्ताव पहुंचाएं। और ता. 16 फरवरी 2018 को रेलवे बोर्ड और रेलमंत्री ने मंजूरी दी। प्रस्ताव भेजने के 46 वे दिन मंजूरी मिलने का पत्र रेलवे के मुंबई महाव्यवस्थापक इनको पावने छे बजे प्राप्त हुआ। उसी समय मुंबई के जनरल मैनेजर, महाव्यवस्थापक कार्यालय के चीप कमर्शियल मैनेजर दूधे साहब ने तुरंत ये खुशख़बरी राजेश जी को फोन करके बताई। ळ्त्ड वर्पिबम को उमरमाली और थानशिट रेलवे स्टेशनों के मंजूरी का फैक्स 05रू45 को आया था। उन्होंने 46 मिनटों को बाद राजेश जी को कॉल किया था। तब राजेश जी अपने ड्यूटी पूरी करके ऑफिस के बाहर निकल पड़े थे। तब 06:32 बजे कॉल आया था। उन्होंने फोन पर कहा कि, ''राजेश जी , आपके कार्यों को यश प्राप्त हो चुका हैं। हम आपको तहेदिल से हार्दिक बधाई देते हैं।'' यह सब सुनकर उनके खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वे बहुत ही खुश हुए। उनके आँखों से खुशी के आँसू बहने लगे। क्योंकि तकरीबन दस सालों के प्रदीर्घ कालखंड के उपरांत उनको अपने कार्यों में कामयाबी मिली थी। सरकारी नौकरी संभालकर वे अपना समय इस अच्छे कार्य के लिए दे रहे थे। अब उन्होंने क्षण का भी विलंब न लगाते हुए अपने प्रिय पत्नी को पहला कॉल लगाया और सारी खुशख़बरी उसे सुनाई। पत्नी ने यह खुशख़बरी अपने परिवार के सभी सदस्यों को बताई। दूसरा कॉल श्याम उबालें को लगाया रू जो उनका एक बहुत ही भरोसे का कार्यकर्ता हैं। तीसरा कॉल विधायक नरेंद्र पवार साहब को लगाया रू जिन्होंने राजेश जी के अच्छे कार्यों को अच्छी तरह से पहचान लिया था और सच्चे दिल से उनकी मदद की थी। और आज भी उनके साथ रहते हैं। जितना हो सके उतनी मदद करते हैं।

उमरमाली और थानशिट रेलवे स्टेशनों की मंजूरी 46 वे दिन में मिली थी और 46 मिनटों के बाद उन्हें दूधे साहब ने कॉल करके यह खुशख़बरी राजेश जी को दी थी। यह 46 का अंक राजेश जी आज भी भूलें नहीं हैं। जभी रेलवे स्टेशनों का विषय आता हैं, तब यह घटना उनको याद आती हैं। उनका इतना संबंध उस अंक से जुड़ा हुआ हैं।

आखिर वो दिन आ ही गया। 11 नवंबर 2018 में उमरमाली और थानशिट रेलवे स्टेशनों के बांधकाम को प्रारंभ हुआ। और उसका उद्घाटन करने के लिए सांसद सदस्य मा. कपिल पाटिल साहब (आज वे केंद्रीय मंत्री बन चुके हैं।) , शहापुर तहसील के भूतपूर्व विधायक पांडुरंग बरोरा साहब, झेड़.पी.के जिलाध्यक्ष मा. मंजूषा जाधव, शिरोल गांव के सरपंच संतोष आरे, संबंधित इंजिनिअर्स, संबंधित स्टेनश मास्टर और के 3 के संस्थापक अध्यक्ष आदरणीय राजेश जी घनघाव इनके हाथों से उद्घाटन समारोह संपन्न हुआ। इस तरह से 11 नवंबर 2018 में उमरमाली और थानशिट रेलवे स्टेशनों के बांधकाम को प्रारंभ हुआ। यह घटना भायतीय रेलवे स्टेशनों के इतिहास में सुवर्ण अक्षरों लिखी जाएगी। क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्य से कल तक ये दो रेलवे स्टेशनों पर सिर्फ़ कुछ ही ट्रेन्स

रुकती थी। लेकिन आज से आगे चलकर सभी ट्रेन्स रुकने लगी। ऐसी घटना सिर्फ़ राजेश जी के अथक परिश्रम और उनके संगठन के सभी सदस्यों के प्रयत्नों से सफल हो गई।

जब तक उमरमाली और थानशिट इन दो रेलवे स्टेशनों का निर्माण नहीं होता, तब तक हम प्रमोशन का स्वीकार नहीं करेंगे। ऐसी उन्होंने प्रतिज्ञा ली थी। दो बार उन्होंने प्रमोशन को नकारा था। पर जब इन दो रेलवे स्टेशनों का निर्माण हुआ, तब उन्होंने प्रमोशन का स्वीकार किया। क्योंकि उमरमाली रेलवे स्टेशन का निर्माण करके उन्होंने अपने पिताजी की इच्छा पूर्ण की थी। पर यह देखने के लिए उनके पिताजी रह नही गए। उनका देहांत हो गया था। इस योगदान के लिए उन्हें तहेदिल से धन्यवाद देना चाहिए। उमरमाली और थानशिट रेलवे स्टेशनों का निर्माण करके ना जाने कितने लोगों के सुखों का वे कारण बन चुके थे।

जब भारतीय सेंट्रल रेलवे का इतिहास लिखा जाएगा, तब राजेश जी का नाम सुवर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा। इसमें कोई शक नहीं कि जब तक उमरमाली और थानशिट ये दो रेलवे स्टेशन मध्य रेलवे महामार्ग पर रहेंगे तब तक राजेश जी का नाम अमर रहेगा। उनका पूरा जीवन मुश्किलों से लड़ने के लिए गुज़र गया हैं।

एल्फिंस्टन रेलवे स्टेशन का ओवर ब्रिज गिरने के बाद बहुत बड़ी दुर्घटना हो गई थी। उसमें बहुत से लोग ज़ख्मी हो गए थे। ऐसी घटना फिर से कल्याण से लेकर कसारा तक के मध्य रेलवे स्टेशनों के बीच में ना हो जाए। इसलिए राजेश जी ने रेलवे प्रशासन के अधिकारियों के ध्यान में लाकर शहद रेलवे स्टेशन से लेकर कसारा रेलवे स्टेशन तक विवज वअमत इतपकहम की माँग की। उनकी मांगों को कुछ ही दिनों में रेलवे प्रशासन ने मान्यता दी। और उसी का नतीजा हैं कि रेलवे प्रशासन ने दखल लेकर शहद से कसारा तक सभी स्टेशनों पर तीन तीन विवज वअमत इतपकहम की शुरुआत कर दी हैं। कुछ स्टेशनों पर काम पूरा हुआ हैं और कुछ स्टेशनों पर आज भी चालू हैं।

सन 2012 में कसारा और आसनगांव रेलवे स्टेशनों पर टिकट आरक्षण (Ticket reservation) की सुविधाएं उपलब्ध करके दी। ऐसा करने में उनका बहुत बड़ा हिस्सा रहा हैं। इसके पहले रेलवे प्रवासियों को अपना टिकट आरक्षित करने के लिए कल्याण रेलवे स्टेशन पर जाना पड़ता था।

सन 2020 के रेल बजट मे शहद और आसनगांव रेलवे स्टेशनों पर वातानुकूलित शौचालयों को मंजूर करके लिया। कसारा से कल्याण तक ळत्थ और त्त्थ इनके बैठने के लिए स्वतंत्र कार्यालयों की सुविधाएं करके दी।

आटगांव और खर्डी इन रेलवे स्टेशनों पर गये दस सालों से कँटिन्स बंद थे। उन्हें फिर से चालू करके राजेश जी ने अनेक लोगों के आजीविका का प्रश्न मिटा दिया। विद्यार्थी और रेलवे प्रवासियों की तक़लिफों को दूर किया। खड़वली और टिटवाला रेलवे स्टेशनों के दरमियान गुरवली नामक नये रेलवे स्टेशन के निर्माण के लिए राजेश जी और उनका संगठन आंदोलन कर रहा हैं। यदि यह नया रेलवे स्टेशन मंजूर हो गया तो खड़वली और टिटवाला इनके बीच का अंतर कम हो जाएगा। और आसपास के लोगों के आजीविका की समस्या भी मिट जाएगी।

रविवार ता. 23/03/2025 को मध्य रेल महाव्यवस्थापक धरमवीर मीना साहब जब इगतपुरी से लेकर कल्याण तक का रेलवे का काम और रेलवे की समस्याएं देखने के लिए आए थे। तब राजेश जी अपने संगठन के सदस्यों के साथ मीना साहब को मिलने गए थे। उन्होंने कसारा से लेकर कल्याण और कर्जत तक की रेलवे की सारी समस्याएं उनके सामने रखी। कसारा से जव्हार तक रेलगाड़ी गई तो उनको भी मुख्य प्रवाह से जुडने में मदद मिलेगी और उस परिसर का भी विकास होगा। इसलिए उन्होंने अपने सदस्यों के साथ मीना साहब को कसारा - जव्हार रेलवे का निवेदन दिया।

आज भी राजेश जी को रेलवे बजट के लिए टीवी चौनल वाले बड़ें सम्मान के साथ बुलाते हैं और कार्यक्रम समाप्त होने के बाद उन्हें घर तक छोड़ने के लिए फोरव्हीलर गाड़ी भेज देते हैं।

आज भी वे रेलवे प्रवासियों की हर समस्याओं का निराकरण करते है। उनको न्याय देने के लिए वे कभी ळत्ड, तो कभी क्त्ड से मिलते है। विधायक, सांसद सदस्य और जो जो रेलवे संबंधित अफसर हैं, उनसे मिलकर रेलवे प्रवासियों के लिए जो भी सुविधाएं हो सकती हैं, वो उन्हें उपलब्ध कराने में राजेश जी ने अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया हैं। वे रेलवे प्रवासियों की हर सुविधाओं के लिए संघर्ष करते है। और यह सब अपनी खुदकी सरकारी नौकरी संभालकर कर रहे है। खुदका पैसा खर्च करके कर रहे है। उनकी जगह यदि कोई दूसरा होता, तो शायद इतनी सारी मुश्किलों को देखकर हार मान

लेता। पर हमेशा संघर्षरत रहना वे अपनी प्रेरणा, आदर्श व मार्गदर्शक डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर जी से सीखें हैं। जबतक न्याय मिलता नहीं, तबतक लड़ते रहना उनका स्वभाव बन चुका हैं।

सामाजिक कार्यों में योगदान :

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के सामाजिक कार्यों से प्रेरित होकर राजेश जी भी अपना समय निकालकर सामाजिक कार्य करते रहते हैं। वैसे देखा जाए तो सरकारी नौकरी संभालकर कोई व्यक्ति सामाजिक कार्यों में ज्यादा समय नहीं बिताता। क्योंकि रविवार का एक ही दिन उसे छुट्टी रहती हैं और वो छुट्टी वो व्यक्ति अपने परिवार के साथ बिताता हैं। लेकिन राजेश जी उसे अपवाद स्वरूप हैं। क्योंकि वे अपनी छुट्टी सामाजिक कार्यों के लिए खर्च करते हैं। ऐसे बहुत ही कम दिन होगें की उन्होंने अपने परिवार के साथ रविवार की छुट्टी बिताई होगी। उनके परिवार के सभी सदस्य उनके कार्य को समझाकर लेते हैं। खासकर एक बात का जिक्र हमेशा करना चाहिए कि जिस घर की औरत अच्छी हो, अपने पति को समझाकर लेती हो, उसके कार्यों में उसके साथ रहती हो, वो व्यक्ति कभी भी ज़िंदगी में पीछे नहीं रहता। उस व्यक्ति का हमेशा मंगल ही होगा। क्योंकि पति के हर अच्छे कार्यों में उसके पत्नी का हाथ होता हैं।

सामाजिक कार्यों के लिए राजेश जी हमेशा दस कदम सबके आगे रहते हैं। अपने शिरोल गांव से लगभग दो किलोमीटर दूरी पर उमरमाली रेलवे स्टेशन और हायवे रोड़ हैं। उसके आसपास बहुत ही घना जंगल हैं। इसके कारण वहाँ पर कभी कभी गुंडे लोग आकर किसी की हत्या कर के जंगल में फेंक देते थे। ऐसे में सामान्य लोगों के मन में बहुत डर रहता था। वे घर से हायवे तक बाहर निकलने के लिए तैयार नहीं होते थे। इस तरह की घटना फिर से हमारे विभाग में नहीं होनी चाहिए। इसीलिए राजेश जी ने तत्कालीन सांसद सदस्य मा. सुरेश जी टावरे साहब की सहायता से मुंबई - दिल्ली हायवे पर स्थित उमरमाली स्थान पर पोलीस चौकी का निर्माण करवा दिया। अब वहाँ पर कोई गुनाह नहीं होते और सामान्य नागरिक कहीं पर भी घुम सकते हैं।

शिरोल ग्रुप ग्रामपंचायत के अंतर्गत जितने भी गांव आते हैं, उनमें रहने वाले लोगों में जो भी झगड़े होते थे, वे सभी आपस में मिटाने में राजेश जी का अमूल्य योगदान रहा। ऐसा करते करते सब ग्रामपंचायत श तंटामुक्त श (झगड़ा मुक्त) हो गई। परिणामस्वरूप शिरोल ग्रामपंचायत को तत्कालीन महाराष्ट्र के गृहराज्यमंत्री मा.आर.आर.पाटिल जी के हाथों से पाँच लाख रुपये इनाम दिया गया।

शिरोल और अज़नुप इन दो ग्रुप ग्रामपंचायत के अंतर्गत कुल मिलाकर 25 गावों का समावेश हैं। लेकिन एक भी अच्छा सरकारी अस्पताल नहीं हैं। जो भी हैं, उसमें अच्छी सुविधाएं नहीं मिलती। इसी कारण लोगों को अपने बिमारियों का इलाज़ करने के लिए खड़ीं या कसारा या शहापुर, नहीं तो ठाणे या मुंबई जाना पड़ता हैं। इन सारी समस्याओं को ध्यान में रखकर राजेश जी ने एक अच्छे सब सुविधाओं से परिपूर्ण सरकारी दवाखाने का सपना देखा। इसीलिए उन्होंने अपना सपना पूरा करने के लिए मन में निश्चय किया और अपने काम में लग गये। शिरोल गांव में एक मध्यवर्ती अस्पताल निर्माण करने के लिए वे प्रयासरत रहे। गांव में एक महसूल विभाग की जगह थी। उस जगह सरकारी अस्पताल होना चाहिए यह सोचकर वे काम करने लगे। गांव में लोगों को विश्वास में लेकर उन्होंने जिलाधिकारी से पत्रव्यवहार शुरू किया। जिलाधिकारी कार्यालयों में आना जाना शुरू हुआ। एक दिन एक अव्वल लिपिक ने राजेश जी से कहा कि, ''राजेश जी, आपकों इसमें इतना इंटरेस्ट क्यों हैं?'' बस अव्वल लिपिक के इस प्रश्न को प्रति उत्तर देने के लिए राजेश जी उत्तर दिया की, ''हम लोग हमारा इलाज करने के लिए कहीं पर भी जा सकते हैं। लेकिन इन सामान्य आदिवासी समाज और ग़रीब लोगों का क्या होगा ? हमें उनके इलाज के लिए और हमारा परिसर निरोगी रहे, इसीलिए हमें सरकारी अस्पताल की सख्त जरूरत हैं।'' यह सुनकर उस अव्वल लिपिक के होश उड़ गए और उसनें वततल कहकर अपने दोनों हाथ जोड़कर माफ़ी मांगी। छह सालों के बाद वो महसूल विभाग की जगह अस्पताल के लिए मिली। फिर उस अव्वल लिपिक ने तुरंत जिला नियोजन समिति को अस्पताल का प्रस्ताव भेज दिया और नियोजन मंडल ने प्रस्ताव मंजूर किया। सन 2019 में उन्होंने वो प्रस्ताव मुंबई आरोग्य भवन को भेज दिया और फिर मुंबई आरोग्य भवन ने उस प्रस्ताव को आरोग्य मंत्री के और शासन निर्णय के लिए भेज दिया। सरकारी अस्पताल के लिए 4 कोटि, 3 लाख, 56 हजार रुपये का निधि मंजूर हो गया हैं। वहाँ पर पंद्रह कर्मचारी नियुक्त किए जाएंगे। गर्भवती महिलाओं का और अनेक प्रकार के रोगों

का निदान वहाँ पर किए जाएगें।

गांव में लाइट के खंभों पर 100 हॉल्टेज के बल्ब लगे हुए थे। लेकिन राजेश जी ने खुद के ख़र्चों से 30 मर्क्युरी लगा दिये। उनका ये कार्य देखकर अब हर एक गांव में मर्क्युरी लगाये हुए दिखाई देते हैं।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के जन्मदिन के मंगल अवसर पर राजेश जी ने युनिक अँकेडमी मुंबई को संपर्क करके कुछ निपुण प्राध्यापकों को आमंत्रित किया। उन्होंने डच्छे और न्च्छेका सभी विद्यार्थियों को अमूल्य मार्गदर्शन किया।

कोरोना संक्रमण के कालखंड में उन्होंने शिरोल गांव में बाहर से प्रवेश करने वाले लोगों और वाहनों को रोक दिया था। इस कार्य के लिए उन्होंने पुलिस और ग्रामपंचायत के कर्मचारी व अधिकारियों की सहायता ली थी। शिरोल ग्रुप ग्रामपंचायत में जितने भी गांवों का समावेश हैं, उन सभी को कोरोना कालखंड में जीवनोपयोगी वस्तुओं का वितरण करने के लिए कहा और वैसी कार्यवाही की।

सामान्य लोगों के लिए अपनी जान भी देने के लिए राजेश जी हमेशा तैयार रहते हैं। इसीलिए हमने उनको श्भीमसैनिकश की उपाधि दी हैं।

आंबेडकरवादी साहित्यकारों को प्रोत्साहन :

नागपुर के 'विदर्भ साहित्य संघ' ने डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर जी को सम्मानित किया था। उस समय डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने साहित्यकारों को प्रोत्साहित करते हुए अपने भाषण में कहा था कि, ''उदात्त जीवनमूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों को अपने साहित्यप्रकारों से आविष्कृत करीये। अपना लक्ष्य सीमित, मर्यादित मत रखिये। उसे विशाल बनाइये। अपनी वाणी चार दिवारों तक सीमित मत रखिये। उसका विस्तार होने दीजिये। अपनी लेखणी सिर्फ़ अपने ही प्रश्नों तक बाँधकर मत रखिये। उसका तेज गाव बस्तियों में छिपा हुआ गहरा अंधेरा दूर हो जाए इस तरह से परिवर्तित करीये। अपने इस देश में उपेक्षितों का, दलितों का एक विश्व हैं, उसे मत भूलिये। उनके दुरूख, उनकी व्यथाएं अच्छी तरह से समझकर लीजिये और अपने साहित्य के माध्यम से उनका जीवन उन्नत करने के लिए प्रयासरत रहिये। उसमें ही सच्ची मानवता हैं।'' (हिंदी अनुवाद - प्रा.जगदीश घनघाव)

साहित्यकार, आलोचक व महान विचारक डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के इस साहित्यिक विचारों को केंद्रीभूत रखते हुए कवि, लेखक प्रा. जगदीश घनघाव जी लेखन करते है।

आंबेडकरवादी साहित्यकारों को प्रोत्साहन देने का राजेश जी ने हमेशा प्रयास किया हैं और आज भी निरंतर करते आए हैं।

सन 2002 का साल था। उनके छोटे भाई जगदीश घनघाव एक उत्तम आंबेडकरवादी कवि, लेखक, समीक्षक और विचारक के रूप में मराठी साहित्य विश्व में आज पहचान जाते हैं। आज भी एक प्रख्यात अखंड़कार के रूप में उनका दबदबा कायम रहा हैं। ''साहित्य के कारण समता का संवर्धन और विषमता का उन्मूलन होना चाहिए'' साहित्यसम्राट डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के इन महान विचारों को केंद्रित रखकर वे साहित्य सृजन कर रहे हैं। इसीलिए उनकी साहित्यकृतियाँ समाज, साहित्य और संस्कृति के लिए एक अनमोल उपहार हैं। सत्यशोधक कवि, अखंड़कार जोतीराव फुले जी अखंड़ो का उन्होंने पुनर्जीवन किया है।

सन 2002 का साल घनघाव परिवार के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण था। क्योंकि इसी साल में जगदीश घनघाव नामक एक सदस्य कवि के रूप में मराठी साहित्य विश्व में आगमन करनेवाला था। जगदीश घनघाव की कविताओं ने परिवार के सभी सदस्यों को विचार करना मजबूर किया था। आंबेडकरवादी विचारों से प्रेरित होकर लेखन करने के कारण उनके कविताओं ने आसपास के सभी लोगों के और आंबेडकरवादी कवि, लेखक, समीक्षकों और विचारकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था।

ऐसे में आंबेडकरवकदी साहित्यकारों को हमेशा प्रोत्साहन देने के लिए तैयार रहना राजेश जी अपना परम कर्तव्य समझते रहे। क्योंकि साहित्य के ही माध्यम से आंबेडकरवाद पूरे देश में और विश्व में फैला सकते हैं इन बातों पर उनका पूरा भरोसा था। इतना ही नहीं तो साहित्य के ही माध्यम से समाज परिवर्तन हो सकता हैं इन बातों पर उनका विश्वास था। क्योंकि साहित्य, समाज और संस्कृति इन तीनों का एकदुसरों से घनिष्ठ संबंध होता हैं, यह राजेश जी अच्छी तरह से जानते थे। इसीलिए उन्होंने जब अपने छोटे भाई के श्अखंडश पढ़े तब एक निर्णय लिया कि हम इस श्अखंड़संग्रहश को प्रकाशित करेंगे। चाहे कुछ भी हो जाए पर मैं मेरे विचारों से जरा सा भी हट नहीं

जाऊंगा। और 20 मार्च 2002 में श षडयंत्र श नामक पहला अखंड़संग्रह प्रकाशित किया। मराठी साहित्य विश्व का प्रकाशित हुआ यह पहला अखंड़संग्रह था।

सन 14 अप्रैल 2014 में जगदीश घनघाव का श बोधीवृक्षाची तू छाया श नामक दूसरा काव्यसंग्रह प्रकाशित हुआ । जिसमें उन्होंने काव्य के विविध प्रकारों का आविष्कार अत्यंत सहजता व सरलता से किया है । एक ही विषय पर 108 कविताएं लिखकर उन्होंने मराठी साहित्य में एक रेकार्ड किया है।

आंबेडकरवादी साहित्य सम्मेलन हो या परिसंवाद हो राजेश जी हमेशा बडे दिल से मुँहमाँगी धनराशि देते आए हैं । वे दिल के अमीर आदमी है। इसकी प्रतीति साहित्यकारों को और सामाजिक संगठनों को आती रहती है।

नहीं रह जाता अर्थ कोई

देश हैं इतनी मुश्किलों में
उन लोगों का ध्यान कहाँ
फिर सत्ताधारी होने का
नहीं रह जाता अर्थ कोई।

सफ़र पर निकले लोग
फँसे धुआँधार बारिश में
फिर पहचान वाले महल का
नहीं रह जाता अर्थ कोई।

बड़े बड़े हैं पेड़ यहाँ पर
रुकना पड़ता हैं धूप में
फिर इतने घने छाँव का
नहीं रह जाता अर्थ कोई।

बहती हैं नदी सामने से
तड़पते रहे पानी के लिए
फिर इतने मीठे पानी का
नहीं रह जाता अर्थ कोई।

घना अंधेरा छा गया जब
तरसते रहे रोशनी के लिए
फिर देर से उगे सूरज का
नहीं रह जाता अर्थ कोई।

आग लगी हैं चारों ओर से
जल रही हैं इमारत सारी
फिर इतने बड़े समंदर का
नहीं रह जाता अर्थ कोई।

- प्रा. जगदीश घनघाव



पहचान, आत्मगौरव और सामाजिक एकता के प्रश्न

– लालजी निर्मल
सदस्य, उत्तर प्रदेश विधान परिषद



1. जातिसूचक शब्द, आत्मगौरव और कानून का अंतर्विरोध

मुझे याद है कि सहारनपुर के शब्बीरपुर में दलित उत्पीड़न की घटना हुई थी। उस समय डॉ. आंबेडकर महासभा के एक प्रतिनिधिमंडल के साथ मैं वहाँ गया था। रास्ते में लगे एक बोर्ड ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया, जिस पर लिखा था– The Great Chamar।

दलित आंदोलन का यह एक नया पड़ाव था, जिसमें कुछ दलित जातियाँ अपनी जातीय पहचान पर गर्व की अनुभूति कर रही थीं। इस विषय पर मीडिया में भी काफी चर्चा हुई। उसी समय मेरे मन में एक प्रश्न उठा था कि जिस शब्द के संबोधन मात्र से, यदि उसका प्रयोग किसी गैर–दलित द्वारा अपमानजनक संदर्भ में किया जाए, तो अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम प्रभावी हो जाता है, क्या उसी शब्द पर सार्वजनिक रूप से गर्व किया जा सकता है? यह प्रश्न लंबे समय तक अनुत्तरित बना रहा।

पिछले दिनों यह प्रश्न पुनः मेरे सामने उपस्थित हुआ। पत्रकार सौरभ द्विवेदी ने अपने पैतृक गाँव, जनपद जालौन में एक बड़े साहित्यिक कार्यक्रम का आयोजन किया, जिसमें देश के अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकारों और कवियों ने भाग लिया। उस गाँव का नाम 'चमारी' है। यह वही शब्द है, जिसके अपमानजनक प्रयोग पर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के अंतर्गत कार्रवाई संभव है।

मेरे मन में प्रश्न उठा कि जिस शब्द के प्रयोग को कानून अपमानजनक और दंडनीय मानता है, उसी शब्द पर किसी गाँव का नाम कैसे आधारित हो सकता है? मैंने इस विषय को मुख्यमंत्री जी के संज्ञान में लाते हुए गाँव का नाम परिवर्तित करने का अनुरोध किया। इस संबंध में जिलाधिकारी से भी चर्चा हुई। उन्होंने स्वीकार किया कि यह नाम सुनकर उन्हें भी असहजता हुई थी और बताया कि नाम परिवर्तन की प्रक्रिया पर विचार चल रहा है।

इसके बाद उस गाँव के अनेक लोगों के फोन मेरे पास आने लगे। उनका तर्क था कि यह नाम उनके पूर्वजों की विरासत है और उन्हें इस नाम पर गर्व है। हाल ही में उरई प्रवास के दौरान आंबेडकर महासभा के अध्यक्ष तथा मेरे मित्र पत्रकार पंकज दोहरे जी से भी इस विषय पर चर्चा हुई। उन्होंने भी गाँव का नाम न बदलने का पक्ष रखा।

इन प्रतिक्रियाओं ने मुझे पुनर्विचार के लिए विवश किया। मुझे लगा कि दलित आंदोलन ने अनजाने में कुछ ऐसे विचारों को भी बढ़ावा दिया है, जिनके परिणामस्वरूप अनेक दलित जातियाँ अब अपनी जातिगत पहचान पर गर्व व्यक्त करने लगी हैं। यह एक नई सामाजिक मनोदशा है, जिसकी गंभीर समीक्षा की जानी चाहिए।

फिलहाल पंकज जी के अनुरोध पर मैंने नाम परिवर्तन के अपने प्रयास को स्थगित कर दिया है। किंतु मेरे मन में आज भी वही प्रश्न उपस्थित है– यदि कुछ जातिसूचक शब्द अब गौरव, अस्मिता और आत्मसम्मान के प्रतीक माने जा रहे हैं, तो फिर उन्हें अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के अंतर्गत अपमानजनक संबोधन की श्रेणी में किस आधार पर बनाए रखा जा सकता है?

यह प्रश्न केवल कानून का नहीं है। यह पहचान, आत्मसम्मान, सामाजिक स्मृति और सामाजिक परिवर्तन की

दिशा से जुड़ा हुआ प्रश्न है। इस पर गंभीर वैचारिक विमर्श की आवश्यकता है।

2. जातीय उभार और सामाजिक एकता का प्रश्न

दलितों के जातीय उभार ने न केवल दलित एकता को विखंडित किया, बल्कि विभिन्न समूहों के बीच नई दूरियाँ भी निर्मित की हैं। यह स्थिति सामाजिक न्याय की राजनीति के समक्ष एक गंभीर चुनौती के रूप में उपस्थित हुई है। आज अनेक नेता अपनी व्यापक सामाजिक पहचान के बजाय अपनी-अपनी जातीय पहचान से अधिक चिन्हित किए जाते हैं।

बाबा साहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर ने जातिविहीन समाज की परिकल्पना की थी। विभिन्न जातियों और समूहों को अनुसूचित जाति की साझा श्रेणी के अंतर्गत संगठित करने के पीछे भी एक व्यापक दृष्टि थी, ताकि वे अपने राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की सामूहिक रक्षा कर सकें। किंतु समय के साथ यह साझा चेतना कमजोर हुई और अनेक स्थानों पर जातीय हितों ने व्यापक सामूहिक हितों का स्थान ले लिया।

एक बार एक पूर्व मुख्यमंत्री ने मुझसे पूछा कि मैं किस जाति से हूँ। मैंने तत्काल उत्तर दिया- ''मैं दलित हूँ।'' शायद यह उत्तर उनके लिए अप्रत्याशित था। वे कुछ क्षण रुके और फिर बोले, ''जी बताइए, क्या करना है?'' मैंने उनसे कहा कि दलितों के प्रोन्नति में आरक्षण के प्रश्न पर एम. नागराज मामले के निर्णय के आलोक में एक समिति गठित कर दीजिए। मुख्य सचिव की अध्यक्षता में समिति गठित भी हुई, किंतु उसकी रिपोर्ट नहीं आई।

इस प्रसंग का आशय केवल इतना है कि यदि कोई नेता स्वयं को केवल एक जाति का प्रतिनिधि मानकर राजनीति करेगा, तो वह समग्र अनुसूचित जातियों के प्रश्नों को किस प्रकार उठाएगा? डॉ. आंबेडकर के सामाजिक परिवर्तन के लक्ष्य को किस प्रकार आगे बढ़ाएगा? व्यापक सामाजिक एकता ही किसी भी वंचित समुदाय की सबसे बड़ी राजनीतिक शक्ति होती है। इसलिए जातीय पहचान और सामूहिक हितों के बीच संतुलन का प्रश्न आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है।



यह छायाचित्र काल्पनिक है। इस चित्र का इस लेख से वास्तविक सम्बन्ध नहीं है।

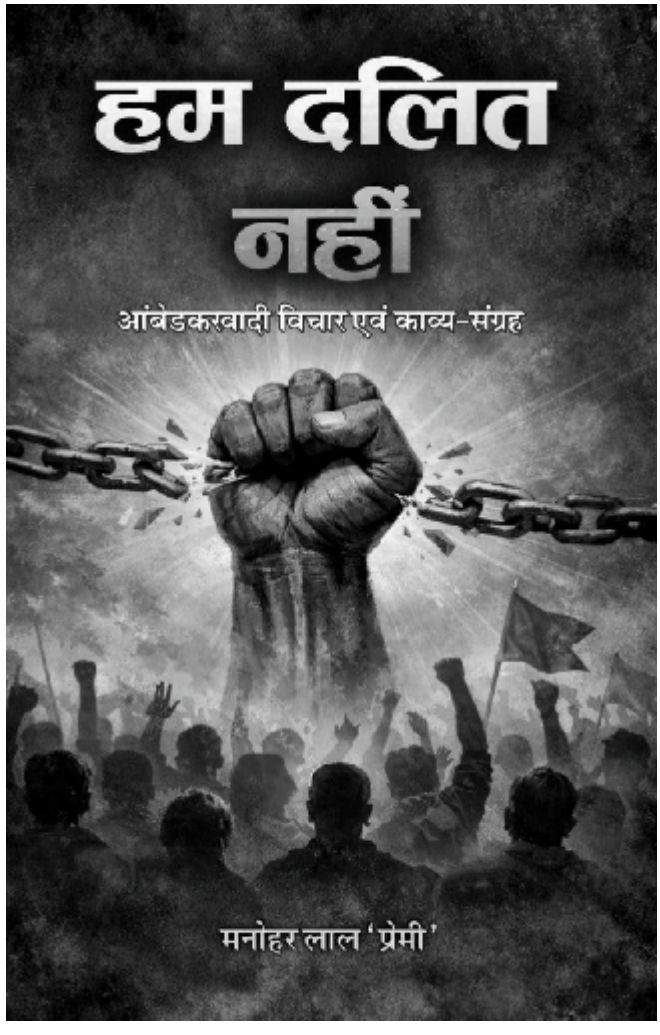
स्वाभिमान की वैचारिक उद्घोषणा : हम दलित नहीं

– डॉ. बी. आर. बुद्धप्रिय

हिंदी के आंबेडकरवादी साहित्य में पहचान, अस्मिता और वैचारिक आत्मनिर्णय के प्रश्न पर निरंतर विमर्श होता रहा है। मनोहर लाल 'प्रेमी' का काव्य-संग्रह हम दलित नहीं इसी विमर्श में एक स्पष्ट, निर्भीक और वैचारिक हस्तक्षेप के रूप में सामने आता है। यह संग्रह केवल कविताओं का संकलन नहीं है, बल्कि एक सुविचारित वैचारिक प्रतिपादन है, जिसका उद्देश्य पीड़ा के इतिहास को नकारना नहीं, बल्कि उसे मनुष्य की स्थायी पहचान बना देने की प्रवृत्ति पर प्रश्न उठाना है। पुस्तक के आरंभ में लेखक की घोषणा ही उसकी वैचारिक दिशा स्पष्ट कर देती है। लेखक लिखता है-''मैं अपनी साहित्यिक पहचान के लिए 'दलित साहित्य' अथवा 'दलित साहित्यकार' जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं करूँगा।'' (हम दलित नहीं, पृ. 13) यह कथन केवल शब्दों के चयन का प्रश्न नहीं है, बल्कि पहचान की राजनीति पर एक गंभीर वैचारिक टिप्पणी है। लेखक का मानना है कि साहित्य की पहचान पीड़ा की स्थायी संज्ञा में नहीं, बल्कि मनुष्य की चेतना, गरिमा और सामाजिक भूमिका में निहित होनी चाहिए।

संग्रह का पहला वैचारिक निबंध ''हम दलित नहीं : शब्द, पहचान और मनुष्य की गरिमा'' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लेखक लिखता है-''मनुष्य का स्वाभिमान केवल पीड़ा की पहचान से निर्मित नहीं होता।'' (हम दलित नहीं, पृ.17) यही पुस्तक का केंद्रीय प्रतिपाद्य है। लेखक इतिहास को अस्वीकार नहीं करता, बल्कि इतिहास और पहचान के बीच आवश्यक अंतर स्थापित करता है। वह स्पष्ट करता है कि अन्याय का इतिहास स्वीकार करना और उसी इतिहास को स्थायी पहचान बना लेना दो भिन्न स्थितियाँ हैं। इस दृष्टि से यह पुस्तक आत्मदया के स्थान पर आत्मसम्मान की स्थापना करती है।

काव्यात्मक स्तर पर संग्रह की सबसे बड़ी शक्ति इसकी वैचारिक स्पष्टता है। कवि जटिल प्रतीकों और बिंबों के बजाय सीधे संवाद की शैली अपनाता है। उदाहरण के लिए-''अनुयायी हम भीम के, नहीं दलित हैं आज। हम शिक्षित संगठित जन, अब है सभ्य समाज।।'' (हम दलित



नहीं, पृ. 45) यह दोहा डॉ. आंबेडकर के शिक्षा, संगठन और संघर्ष के संदेश को वर्तमान सामाजिक यथार्थ से जोड़ता है। कवि का आग्रह है कि शिक्षा और संगठन से सशक्त समाज को अपनी पहचान भी स्वाभिमानपूर्ण आधार पर निर्मित करनी चाहिए।

संग्रह का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसका मानवतावादी स्वर है। कवि केवल किसी एक समुदाय की पहचान पर नहीं रुकता, बल्कि संपूर्ण सामाजिक संरचना की समीक्षा करता है। वह लिखता है-''सम शारीरिक है सृजन, नर मादा पहचान। मानव कृत हैं जातियाँ, डाल रहीं व्यवधान।।'' (हम दलित

नहीं, पृ. 53) इन पंक्तियों में जाति को मानव-निर्मित अवरोध के रूप में देखा गया है। इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए कवि कहता है-''गरिमा अति इंसान की, करें नहीं अपमान। वांछित है सबको सदा, मानवीय सम्मान।।'' (हम दलित नहीं, पृ. 53) यहाँ कवि की दृष्टि केवल जाति-विरोध तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह मानवीय गरिमा को सामाजिक जीवन का मूल आधार घोषित करता है।

पुस्तक का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष आंबेडकरवाद की उसकी व्याख्या है। ''हम आंबेडकरवादी हैं'' कविता में लेखक आंबेडकरवाद को केवल वैचारिक पहचान नहीं, बल्कि सामाजिक दायित्व और संघर्ष की सतत प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है-''करना नित संघर्ष ही, है आंबेडकरवाद। सर्वोपरि है समाजहित, अन्य काम हों बाद।।'' (हम दलित नहीं, पृ. 56) यह दोहा पुस्तक की वैचारिक रीढ़ कहा जा सकता है। लेखक के लिए आंबेडकरवाद श्रद्धा का विषय भर नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सक्रिय कार्यक्रम है। प्रा. दामोदर मोरे ने अपनी भूमिका में इस संग्रह को सामूहिक चेतना, अस्मिता-बोध और मानवता-बोध का काव्य बताया है। उनके अनुसार हम दलित नहीं का ष्नहींष मात्र निषेध नहीं, बल्कि स्वाभिमान और आत्मनिर्णय की घोषणा है (हम दलित नहीं, पृ. 7-12)। वास्तव में संग्रह का संपूर्ण स्वर आत्महीनता के निषेध और आत्मगौरव की स्थापना से निर्मित हुआ है।

भाषा की दृष्टि से संग्रह सरल, सहज और जनोन्मुख है। अधिकांश रचनाएँ दोहा-विधान में हैं, जिससे विचार सीधे पाठक तक पहुँचते हैं। कवि का लक्ष्य कलात्मक जटिलता का प्रदर्शन नहीं, बल्कि वैचारिक संवाद स्थापित करना है। इसी कारण उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट, संक्षिप्त और प्रभावकारी बन पड़ी है। समग्रतः हम दलित नहीं आत्मसम्मान, मानवीय गरिमा, सामाजिक समता और आंबेडकरवादी चेतना का समर्थक काव्य-संग्रह है। यह पुस्तक स्थापित शब्दावलियों की पुनर्समीक्षा करती है, पहचान के प्रश्न को नए ढंग से उठाती है और पाठक को यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि मनुष्य की अंतिम पहचान उसकी पीड़ा नहीं, बल्कि उसकी चेतना, संघर्ष और स्वाभिमान है। इसी कारण यह कृति समकालीन आंबेडकरवादी साहित्य में गंभीर चर्चा और मूल्यांकन की अधिकारी है।

पुस्तक : हम दलित नहीं
रचनाकार : मनोहर लाल 'प्रेमी'
प्रकाशक : आंबेडकरवादी साहित्य प्रकाशन, लखनऊ
मूल्य : 60/-



आंबेडकर के मिशन की समकालीन व्याख्या है पुस्तक ''आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत''

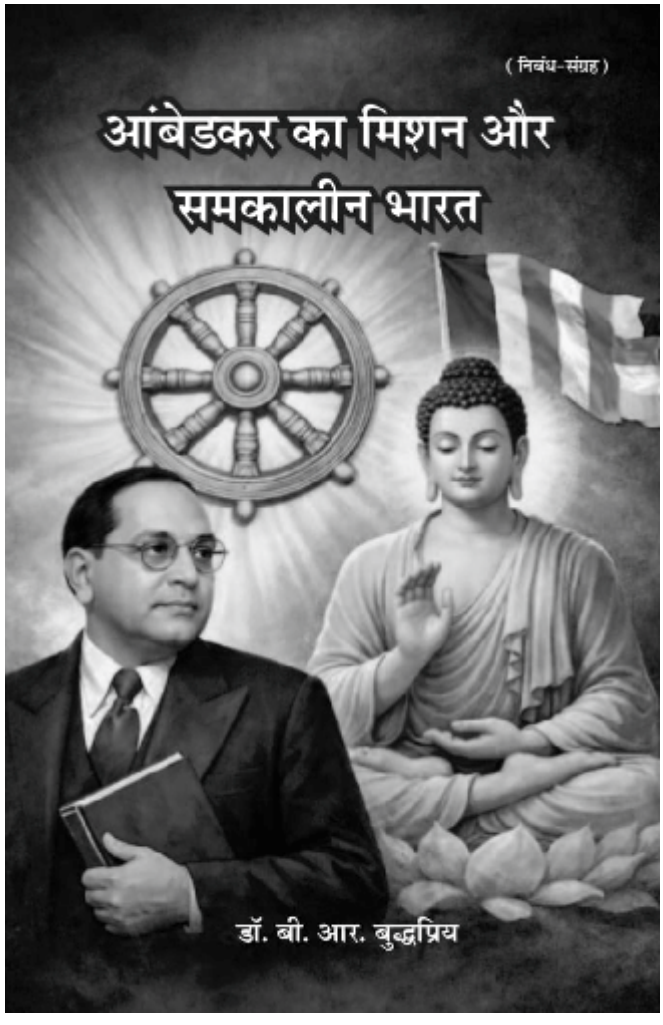
- प्रा. दामोदर मोरे

सेवानिवृत एसोसिएट प्रोफेसर एवं पूर्वाध्यक्ष, मराठी विभाग जोशी-वेडेकर महाविद्यालय, ठाणे (महाराष्ट्र)

डॉ. बी.आर. बुद्धप्रिय की पुस्तक आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत डॉ. भीमराव आंबेडकर के चिंतन को समकालीन भारतीय समाज की चुनौतियों के संदर्भ में समझने का एक गंभीर और सुव्यवस्थित प्रयास है। यह पुस्तक न तो आंबेडकर के जीवन का सामान्य परिचय है और न ही उनके विचारों का भावनात्मक गुणगान; बल्कि यह उनके सामाजिक मिशन के प्रमुख आयामों का विश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत करती है। लेखक का उद्देश्य आंबेडकर को इतिहास के एक महापुरुष के रूप में स्थापित करना मात्र नहीं है, बल्कि उनके विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता को रेखांकित करना है।

पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता इसकी वैचारिक स्पष्टता है। लेखक प्रारंभ में ही यह स्थापित करता है कि डॉ. आंबेडकर का लक्ष्य केवल राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति नहीं था, बल्कि भारतीय समाज की असमान संरचना को बदलना था। लेखक लिखता है कि आंबेडकर का मिशन भारतीय समाज को जन्माधारित असमानताओं से मुक्त कर समानता और मानव गरिमा के आधार पर पुनर्गठित करना था (आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत, पृ. 15)। यह कथन पूरी पुस्तक की केंद्रीय अवधारणा बनकर सामने आता है।

''जाति की समस्या'' शीर्षक अध्याय पुस्तक के महत्वपूर्ण अध्यायों में से एक है। लेखक जाति को केवल सामाजिक पहचान का प्रश्न नहीं मानता, बल्कि उसे समाज की संरचना से जुड़ी हुई व्यवस्था के रूप में देखता है। वह स्पष्ट करता है कि जाति-व्यवस्था समाज के भीतर स्थायी दूरी और असमानता को बनाए रखने वाली प्रणाली है (आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत, पृ. 22)। इस विश्लेषण की विशेषता यह है कि लेखक जाति की आलोचना को केवल



नैतिक स्तर पर नहीं रखता, बल्कि उसके सामाजिक और संरचनात्मक प्रभावों की भी चर्चा करता है।

पुस्तक का ''सामाजिक परिवर्तन'' अध्याय विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लेखक सामाजिक परिवर्तन को केवल कानूनों अथवा प्रशासनिक सुधारों तक सीमित नहीं रखता। उसके अनुसार परिवर्तन का संबंध समाज की मानसिकता, मूल्यों और सामाजिक संबंधों से भी है। लेखक लिखता है कि

यदि समाज अपनी परंपराओं को अपरिवर्तनीय मानकर परिवर्तन से इंकार कर देता है, तो वह धीरे-धीरे जड़ता का शिकार हो जाता है (आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत, पृ. 29)। यह दृष्टि आंबेडकर के उस आग्रह की याद दिलाती है जिसमें उन्होंने सामाजिक लोकतंत्र को राजनीतिक लोकतंत्र की आधारशिला माना था।

पुस्तक में राजनीतिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर भी गंभीर चर्चा की गई है। लेखक के अनुसार लोकतंत्र की सफलता तभी संभव है जब समाज के सभी वर्गों को शासन की प्रक्रिया में भागीदारी प्राप्त हो। वह लिखता है कि यदि समाज के कुछ वर्ग लगातार प्रतिनिधित्व से वंचित रहेंगे, तो लोकतंत्र केवल औपचारिक व्यवस्था बनकर रह जाएगा (आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत, पृ. 49)। यह विश्लेषण डॉ. आंबेडकर की उस लोकतांत्रिक दृष्टि को स्पष्ट करता है जिसमें राजनीतिक प्रतिनिधित्व सामाजिक न्याय का एक अनिवार्य साधन है। लेखन शैली की दृष्टि से पुस्तक सरल, स्पष्ट और सुव्यवस्थित है। लेखक ने अनावश्यक दार्शनिक जटिलताओं से बचते हुए विषय को क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रत्येक अध्याय एक विशिष्ट प्रश्न को केंद्र में रखता है और उसके सामाजिक, ऐतिहासिक तथा वैचारिक पक्षों की विवेचना करता है। यही कारण है कि पुस्तक शोधार्थियों के साथ-साथ सामान्य पाठकों के लिए भी उपयोगी बन गई है।

हालाँकि पुस्तक का उद्देश्य मौलिक सिद्धांत निर्माण की अपेक्षा आंबेडकरवादी चिंतन का व्यवस्थित परिचय और समकालीन व्याख्या प्रस्तुत करना अधिक प्रतीत होता है। कुछ स्थानों पर यदि डॉ. आंबेडकर की मूल कृतियों से अधिक प्रत्यक्ष उद्धरण और तुलनात्मक विमर्श शामिल किए गए होते, तो पुस्तक का अकादमिक पक्ष और अधिक सुदृढ़ हो सकता था। फिर भी यह सीमा पुस्तक के समग्र महत्व को कम नहीं करती।

समग्रत: आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत एक गंभीर, संतुलित और विचारोत्तेजक निबंध-संग्रह है। यह पुस्तक पाठक को डॉ. आंबेडकर के मिशन की मूल भावना-समानता, सामाजिक न्याय, मानव गरिमा और लोकतांत्रिक सहभागिता-को समझने में सहायता करती है। आज जब भारतीय समाज अनेक सामाजिक, राजनीतिक और वैचारिक चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब ऐसी पुस्तकें केवल अध्ययन सामग्री नहीं रहतीं, बल्कि सामाजिक चेतना को दिशा देने वाले वैचारिक दस्तावेज बन जाती हैं। डॉ. बी. आर. बुद्धप्रिय की यह कृति इसी अर्थ में स्वागतयोग्य और पठनीय है।

पुस्तक : आंबेडकर का मिशन और समकालीन भारत
रचनाकार : डॉ. बी.आर. बुद्धप्रिय
प्रकाशक : आंबेडकरवादी साहित्य प्रकाशन, लखनऊ
मूल्य : 120/-



आंबेडकरवादी साहित्य पत्रिका के प्रतिनिधि

डॉ. नविला सत्यादास	पंजाब	9463615861
श्याम लाल राही	बरेली, उत्तर प्रदेश	9456045567
डॉ. राम मनोहर राव	बरेली, उत्तर प्रदेश	7060240326
डॉ. रमेश कुमार	गुजरात	9719025700
सुरेश सौरभ गाजीपुरी	गाजीपुर, उत्तर प्रदेश	9452846472
सुरेश कुमार राजा	बांदा, उत्तर प्रदेश	8756140206
रघुबीर सिंह 'नाहर'	राजस्थान	9413058580
अश्वनी कुमार	लखनऊ, उत्तर प्रदेश	9450159443
डॉ. बी.आर. बुद्धप्रिय	बरेली, उत्तर प्रदेश	9412318482
डॉ. मुकुंद रविदास	झारखंड	7488199101
डॉ. परसराम रामजी रगडे	महाराष्ट्र	9850492933
भंते संघविजय	बिहार	8539003521
शैलेन्द्र सागर	बिहार	8194931411
मनोहर लाल 'प्रेमी'	लखनऊ, उत्तर प्रदेश	8887792827
राधेश प्रताप 'विकास'	इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश	9956824322
कर्मशील भारती	दिल्ली	9968297866
प्रबुद्ध नारायण बौद्ध	चंदौली, उत्तर प्रदेश	9005441713
मेजर लाल बिहारी प्रसाद	कुशीनगर, उत्तर प्रदेश	9450241748
पिंटू कुमार गौतम	गाजीपुर, उत्तर प्रदेश	8543901668

'आंबेडकरवादी साहित्य' पत्रिका की सदस्यता हेतु विवरण

सदस्यता शुल्क :

वार्षिक : 350/-
द्विवार्षिक : 650/-
त्रैवार्षिक : 1000/-
आजीवन : 7000/-

भुगतान विकल्प :

Bank Account Number : 35332395763
Account Holder : Devachandra Bharati
Bank Name : STATE BANK OF INDIA
IFSC Code : SBIN0012302

Paytm / PhonePe / GPay : 9454199538

आंबेडकरवादी साहित्य प्रकाशन

के तत्वावधान में

हर घर आंबेडकरवादी साहित्य

(वैचारिक जागरण का संकल्प)

अभियान आरंभ : 01 फरवरी 2026

(गुरु रविदास जयंती के अवसर पर)

समाज में समता, न्याय और वैज्ञानिक दृष्टि की स्थापना के लिए आवश्यक है कि डॉ. भीमराव आंबेडकर के विचार व्यापक रूप से पढ़े और समझे जाएँ। इसी उद्देश्य से ''हर घर आंबेडकरवादी साहित्य'' का संकल्प प्रस्तुत किया गया है। यह पहल समाज में वैचारिक जागरण और अध्ययन की संस्कृति को विकसित करने की दिशा में एक संगठित बौद्धिक हस्तक्षेप है।

'आंबेडकरवादी साहित्य' एक वैचारिक, आलोचनात्मक एवं शोधपरक त्रैमासिक हिंदी पत्रिका है, जिसमें आंबेडकर-दर्शन के आधार पर समाज, संस्कृति, राजनीति और इतिहास से जुड़े प्रश्नों का गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। यह पत्रिका आंबेडकरवादी चिंतन, शोध और रचनात्मक अभिव्यक्ति का एक सशक्त मंच है।

इस संकल्प का उद्देश्य है कि आंबेडकर-दर्शन पर आधारित साहित्य अधिक से अधिक घरों तक पहुँचे, अध्ययन और विमर्श की प्रवृत्ति विकसित हो तथा समाज में समतामूलक और लोकतांत्रिक चेतना सुदृढ़ हो।

इस दिशा में सभी जागरूक पाठकों, विद्यार्थियों, चिंतकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं से अपेक्षा है कि वे आंबेडकरवादी साहित्य को प्रत्येक घर तक पहुँचाने के संकल्प में सहभागी बनें और वैचारिक जागरण की इस प्रक्रिया को व्यापक बनाएँ।

आंबेडकरवादी साहित्य प्रकाशन

आंबेडकर-दर्शन पर आधारित साहित्य के प्रकाशन हेतु समर्पित

वैचारिक सहयोग

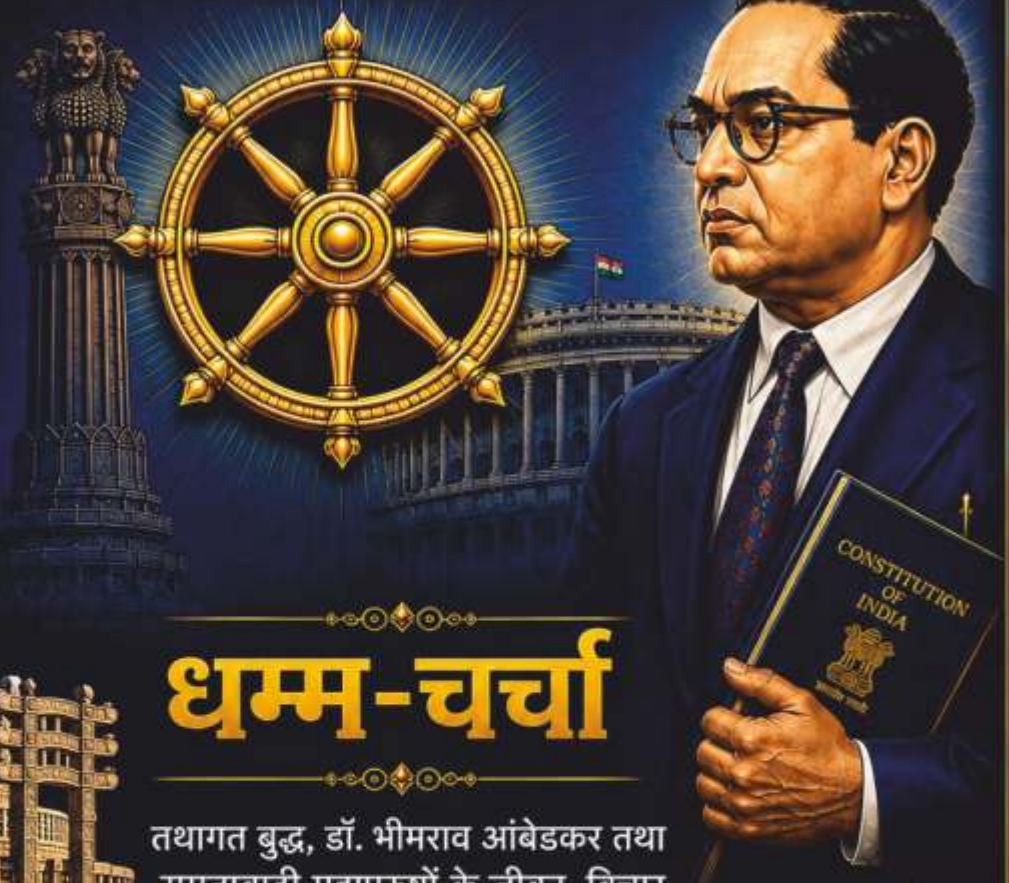
- बहुजन सांस्कृतिक मंच, जनपद शाखा-गाजीपुर

संपर्क : मोहनलालगंज, लखनऊ (उ.प्र.)-226301 मो.: 9219937101, 8543901668
ई-मेल : ambedkarvadisahitya@gmail.com, वेबसाइट : www.ambedkarvadisahitya.com

आंबेडकरवादी साहित्य प्रकाशन

के तत्वावधान में

आंबेडकरवादी साहित्य
प्रकाशन



धम्म-चर्चा

तथागत बुद्ध, डॉ. भीमराव आंबेडकर तथा समतावादी महापुरुषों के जीवन, विचार एवं मिशन पर केंद्रित लोककल्याण की नियमित वैचारिक चर्चा।

धम्म-चर्चा बुद्ध-धम्म और आंबेडकरवाद के मूल्यों पर आधारित समता, न्याय, प्रज्ञा और करुणा की संवादपरक श्रृंखला है। यह कार्यक्रम विचार, समालोचना, अध्ययन और सहभागिता के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सार्थक योगदान देने का प्रयास है। धम्म-चर्चा का उद्देश्य बौद्धिक वातावरण का निर्माण कर आंबेडकरवादी दृष्टि को जीवन और समाज में व्यावहारिक रूप से विकसित करना है।

वेबसाइट (Website)
www.ambedkarvadisahitya.com

ईमेल (E-mail)
ambedkarvadisahitya@gmail.com

मोबाइल (Mobile)
9219937101